पंचम अध्याय

माखनलाल चतुर्वेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा

(क) भाषा का स्वरूप

- भाषा
- कविता की भाषा
- माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा
- रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा

(ख) शब्द-शक्ति

(ग) चित्रात्मकता

(घ) ध्वन्यात्मकता

(च) कल्पनात्मकता

(छ) भावात्मकता

(ज) काव्य-गुण

(झ) शब्द-समूह

(ट) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

(ठ) कवि का व्यक्तित्व और उनकी भाषा

पंचम अध्याय

(क) भाषा का स्वरूप

- **भाषा**

भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने मनोभावों की वाचिक अभिव्यक्ति करता है। यदि हम कल्पना करें कि व्यक्ति या समाज के पास भाषा न हो तो व्यक्ति और समाज कैसा होगा? फिर हम पाएंगे कि व्यक्ति और समाज गूँगा हो जाएगा और उसका एक-दूसरे से वाचिक संपर्क टूट जाएगा। विचारों के आदान-प्रदान की क्रियाएं रुक जाएंगी। भाषा वह साधन है। जिसके द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, और एक दूसरे से जुड़ता है। भाषा का सबसे बड़ा कार्य मनुष्य को परस्पर जोड़ने का कार्य है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य का मनुष्य से वाचिक संपर्क की जो क्रिया है वह भाषा है।

भाषा ध्वनि-संकेतों का समूह होती है। भाषा समाज सापेक्ष होती है। जिसे व्यक्ति समाज से सीखता है या समाज से गृहीत करता है। इस प्रकार भाषा एक सामाजिक संपत्ति होती है जिसे व्यक्ति समाज से अर्जित करता है। भाषा के मुख्यतः दो भेद किए जाते हैं। सामान्य बोलचाल की भाषा और काव्य की भाषा। साहित्य में भी भाषा के दो भेद किए जाते हैं। काव्य भाषा व गद्य की भाषा। काव्यभाषा वह भाषा है जो

छंद, लय, ताल इत्यादि से नियोजित होती है और गद्य भाषा वह है जो छंद, लय, ताल से मुक्त होती है। काव्यभाषा यदि भाव प्रधान होती है तो गद्य की भाषा विचार प्रधान। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का अभिमत है कि "काव्यभाषा कविता के जन्म लेने की भाषा है। वह इसी अर्थ में सृजन है क्योंकि उसमें और उसके द्वारा ही कविता उत्पन्न होती है।"[1]

- **कविता की भाषा**

वह भाषा जिसमें कविता लिखी गई हो काव्य भाषा या कविता की भाषा कहलाती है। हिन्दी साहित्य के अलग-अलग काल खंडों में काव्य भाषा का रूप बदलता रहा है। जैसे आदिकालीन काव्य की भाषा अपभ्रंश अवहट्ट हिन्दी है, भक्ति कालीन भाषा ब्रज व अवधी है, रीतिकालीन ब्रज है तो आधुनिक काल में खड़ी बोली काव्य की भाषा बनती है। कविता के मूल में भाषा होती है। कविता कवि-कर्म सापेक्ष होती है। जिस प्रकार शिल्पकार या कलाकार के अनुसार पत्थर की मूर्ति, पत्थर पर गढ़ी जाती है और फिर एक सुंदर प्रतिमा का रूप धारण कर लेती है वैसे ही कविता की भाषा भी सामान्य भाषा का ही उत्कृष्ट रूप होती है जो काव्यभाषा में परिवर्तित हो जाती है। "काव्यभाषा की मूल तो सुदृढ़ सामान्य भाषा की धरती में ही होती है किन्तु उसका पल्लवन उससे ऊपर, बहुत ऊपर होता है; और जिसके पंक्ति-प्रसूनों के मादक सौरभ से समस्त वातावरण परिपूर्ण हो जाता है तथा जिसका प्रयोग प्रतिभाशाली कवि के अतिरिक्त

सर्वसाधारण की शक्ति से परे होता है।"[2] कविता के संबंध में T. S. Eliot कहते हैं- "The poetry of a people takes its life from the people's speech and in turn gives life to it end represents its highest point of consciousness, its greatest power and its most delicate sensibility."[3] कविता की भाषा की व्याख्या करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबंध संग्रह 'चिंतामणि' में काव्यभाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कविता में मूर्त विधान के संबंध में कहते हैं कि "अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है। इस मूर्ति-विधान के लिए वह भाषा की लक्षणा शक्ति से काम लेती है। जैसे, 'समय बीता जाता है' कहने की अपेक्षा 'समय भागा जाता है' कहना वह अधिक पसंद करेगी। किसी काम से हाथ खींचना, किसी का रुपया खा जाना, कोई बात पी जाना, दिन ढलना या डूबना, मन छूना, शोभा बरसना, उदासी टपकना इत्यादि।"[4] फिर रामचन्द्र शुक्ल जी व्यापार सूचक शब्दों की महत्ता के बारे में बताते हैं और कहते हैं कि कविता में "जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष-रूप-व्यापार सूचक शब्द अधिक रहते हैं। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनसे किसी एक नहीं बल्कि बहुत से रूपों का या व्यापारों का एक साथ चलता-सा अर्थ ग्रहण हो जाता है। ऐसे शब्दों को हम जाति-संकेत कह सकते हैं। ये मूर्त विधान के प्रयोजन के नहीं होते। किसी ने कहा, 'वहाँ बड़ा अत्याचार हो रहा है।' इस अत्याचार शब्द के अंतर्गत

मारना-पीटना, डाँटना-डपटना, लूटना-पाटना इत्यादि बहुत से व्यापार हो सकते हैं, अतः 'अत्याचार' शब्द सुनने से उन सब व्यापारों की मिली-जुली अस्पष्ट भावना थोड़ी देर के लिए मन में आ जाती है; कुछ विशेष व्यापारों का स्पष्ट चित्र या मूर्त रूप नहीं खड़ा होता। इससे ऐसे शब्द कविता के उतने काम के नहीं। ये तत्त्व-निरूपण, शास्त्रीय विचार आदि में ही अधिक उपयोगी होते हैं"[5]

वहीं शुक्ल जी के अनुसार काव्यभाषा में वर्ण-विन्यास की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है शुक्ल जी का कहना है कि "जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नादसौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। श्रुति-कटु मानकर कुछ वर्णों का त्याग, वृतिविधान, लय, अन्त्यानुप्रास आदि नाद सौन्दर्य-साधन के लिए ही हैं।"[6] काव्यभाषा में रूप-गुण या कार्यबोधक शब्दों के प्रयोग के बारे में भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि कविता में "ऐसे शब्दों को चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे प्रकरण विरूद्ध या अवसर के प्रतिकूल न हों। जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी दुर्धर्ष अत्याचारी के हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो तो उसके लिए 'हे गोपिकारमण! हे वृंदावन-बिहारी!' आदि कहकर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा 'हे मुरारि! हे कंसनिकन्दन!' आदि संबोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है; क्योंकि कृष्ण के द्वारा कंस आदि दुष्टों का मारा

जाना देखकर उसे अपनी रक्षा की आशा होती है, न कि उनका वृंदावन में गोपियों के साथ विहार करना देखकर। इसी तरह किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए कृष्ण को 'मुरलीधर' कहकर पुकारने की अपेक्षा 'गिरधर' कहना अधिक अर्थसंगत है।"[7]कविता के संबंध में सियारामशरण गुप्त जी कहते हैं कि, "कविता दर्शन, ज्ञान और विज्ञान की पूर्वजा है। इसी से ईश्वर ने ऋषियों के लिए दृष्टा और ज्ञानी जैसे विशेषण भी उतने उपयुक्त न मानकर 'कवि पुराण' कहकर उसकी वंदना की है।"[8]

कविता का जन्म वाचिक परंपरा में हुआ और आज हमें लिखित रूप में प्राप्त है। कविता के मूल में संवेदना है, राग तत्त्व है। कविता या काव्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम हृदय की कारुणिक अवस्था से हुई। आदिकवि वाल्मीकि जब क्रौंच पक्षी के कारुणिक आद्र को देखते हैं, तब उनका हृदय करुणा व संवेदना से विह्वल हो उठता है और उनके मुख से अनायास ही यह काव्य पंक्तियाँ फूट पड़ती है-

'मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समा:।

यतक्रौंच मिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।' -वाल्मीकि

इसी आह व विह्वलता से कविता का संबंध सुमित्रानंदन पंत जी भी जोड़ते हैं और कहते हैं -

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,

निकल कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान!"[9]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविता का मूल तत्त्व उसकी संवेदना है। कविता भाव तत्त्व प्रधान होती है। कविता की विशेषता यह होती है कि वह गद्य की अपेक्षा कम शब्दों और प्रवाहमय भाषा में निर्मित होने के कारण पाठक के मन पर अधिक प्रभाव डालती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि "कविता एक शाब्दिक चित्र या कलाकृति है इसलिए भाषा के माध्यम से ही उसके भीतर प्रवेश किया जा सकता है। कविता के आंतरिक अर्थ को वर्णनात्मक भाषा में कहने के कारण उसकी प्रतीति भी समाप्त होने लगती है। इस तर्क से कविता अव्याख्येय है उसे अनूदित, व्याख्यायित, वर्णित नहीं किया जा सकता केवल महसूस किया जा सकता है।"[10] कहने का तात्पर्य है कि कविता के मूल रूप से ही आनंद की प्राप्ति होती है। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कहते हैं कि "कल्पनाएँ जितनी ही अद्भुत और नवीन होंगी, उतना ही उनको शब्दों में लाना कठिन होगा, उनका किसी एक भाषा में प्रादुर्भाव होना ही उसके किसी अन्य भाषा में कहे जाने की संभावना को कम कर देता है।"[11]

सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक व्यक्त वाणी को कहते हैं। जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों, विचारों और भावनाओं को व्यक्त करता है। यही व्यक्त वाणी काव्य में प्रयुक्त होकर लिखित रूप में

जब प्रस्तुत की जाती है तो काव्यभाषा कहलाती है। अर्थात् सामान्य बोलचाल में व्यवहृत भाषा को बोलचाल की भाषा या व्यावहारिक भाषा कहते हैं, किन्तु जब वही भाषा काव्य तत्त्वों से नियोजित होकर काव्य में प्रयुक्त हो जाती है, तो काव्यभाषा कहलाती है। काव्यभाषा का स्वरूप सामान्य बोलचाल की भाषा से परिनिष्ठित व परिष्कृत होता है।

अब हम माखनलाल चतुर्वेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा के स्वरूप पर दृष्टिपात करेंगे। दोनों कवियों की राष्ट्रीय कविता में प्रयुक्त रस, अलंकार, छंद, बिम्ब व प्रतीक के प्रयोग के आधार पर कवियों की काव्यभाषा को देखेंगे।

- **माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा का स्वरूप**

माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा के स्वरूप को जानने से पूर्व हम उनकी राष्ट्रीय कविताओं के संग्रह को देख लेते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. हिमकिरीटिनी
2. माता
3. युगचरण
4. समर्पण

5. मरण ज्वार

6. वेणु लो गूँजे धरा

माखनलाल चतुर्वेदी के इन पाँच काव्य संग्रहों में इनकी राष्ट्रीय चेतना से संबंधित कविताएं संकलित हैं। प्रधान रूप से हिमकिरीटिनी, माता और मरण ज्वार में राष्ट्रीय कविताएं संग्रहीत हैं। माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य सृजन का केवल एक ही उद्देश्य था और वह था, मानव मन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करना। उनका ध्यान काव्य कला की ओर उतना नहीं गया जितना काव्य के भाव पक्ष की ओर गया। काव्य सृजन एक कला है, और काव्य कला के भी कुछ सिद्धांत होते हैं। कुछ तत्त्व होते हैं और काव्य का उन सिद्धांतों में बंधना आवश्यक होता है। डॉ. देवराज शर्मा 'पथिक' माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताओं के संबंध में कहते हैं कि, "जिस कवि की लेखनी राष्ट्र के लिए उठी हो, जिसकी वाणी का शब्द-शब्द स्वतंत्रता की जय बोलता हो, जिसकी ललकार से कण-कण वज्र बनकर शत्रु-शमन करने की आतुरता से बलि-पथ पर बढ़ने वाले वीरों का स्वागत करने लगे और जो ज्वालामुखी को उठाकर वक्ष से लगाने की शक्ति लिए हो, ऐसे कवि चतुर्वेदी जी की महान राष्ट्रभक्ति पर समूचे देश को गर्व होना स्वाभाविक है।"[12] माखनलाल चतुर्वेदी जी काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधकर काव्य रचना नहीं करते। वे छंद, अलंकार, शिल्प आदि तत्त्वों के प्रति कभी भी प्रतिबद्ध

नहीं रहे। इस संबंध में डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन जी कहते हैं, "दादा का काव्य-शिल्प अनगढ़ है। उनका काव्य-मार्ग है- वह किसी का अनुगन्ता नहीं है।"[13] किन्तु फिर भी उनके काव्य में छंद, अलंकार, काव्य गुण, शब्द-शक्ति आदि काव्य तत्त्वों का सहज ही प्रयोग हुआ है। स्वाधीनता से पहले इनके द्वारा सृजित काव्य में प्राय: यह काव्य तत्त्व तो मिलते ही हैं उसके बाद के काव्य रचनाओं में भी इनका समावेश हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने केवल मुक्तक एवं गीतिकाव्यों की ही रचना की है उन्होंने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा। भाषा को लेकर माखनलाल चतुर्वेदी के विचार बहुत शुद्धतावादी या विशुद्धता का नहीं है। दशरथ ओझा जी लिखते हैं कि, "भाषा के संबंध में चतुर्वेदी जी अत्यंत उदार रहे हैं। उनकी कविता में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू और फारसी के शब्दों के प्रयोग भी पाये जाते हैं। भाव की कोमलता और अनुभूति की तीव्रता के सम्मुख ये भाषा को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं।"[14] इनकी भाषा जनभाषा के समीप है। अपने भावों को, अपने विचारों को वे कृत्रिम भाषा में व्यक्त नहीं करते। वे उसी भाषा में लिखते हैं जिसमें वे बोलते हैं। साहित्य की भाषा और नित्यप्रति के जीवन की भाषा में वे अधिकान्तर मान कर नहीं चले हैं। अनेक बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से उनकी कई रचनाएं बड़ी मधुर हो गई हैं। इस प्रकार दैनिक जीवन की जन-भाषा को साहित्य की भाषा और साहित्य की भाषा को

जन जीवन की भाषा के निकट लाने का श्रेय माखनलाल चतुर्वेदी जी को है। चतुर्वेदी जी की भाषा जन सामान्य के अधिक करीब है। उसमें किसी तरह का भाषायी आडंबर नहीं दिखाई पड़ता है। सामान्य लोक में प्रचलित शब्दों का प्रयोग वे अपनी राष्ट्रीय कविताओं में अधिक करते हैं।

हिन्दी की जो सहज सरल प्रकृति है उसके स्वभाव के अनुरूप किसी भी भाषा के शब्द वे चाहे उर्दू के हों, फारसी के हों, अंग्रेजी के हों या तत्सम प्रधान भाषा हों वे सबका प्रयोग अपनी कविताओं में खुल कर करते हैं। इसके साथ ही साथ वे कभी-कभी ठेठ शब्दों का भी प्रयोग कर बैठते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि माखनलाल चतुर्वेदी जी की भाषा एक मिली-जुली भाषा है, जो उनके भावों को पूरी गंभीरता के साथ वहन करती है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविता की भाषा सरल, सहज और भावों को अभिव्यक्त करने में सशक्त एवं सक्षम है। इनकी काव्यभाषा खड़ी बोली है, उसमें बुंदेलखंडी का पुट भी है तथा इनकी भाषा में अरबी, फारसी के शब्द भी हैं परंतु कहीं उनकी भरमार नहीं है। माखनलाल चतुर्वेदी जी अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग भी करते हैं तो सहज रूप में नवीन उपमान लेते हैं। नवीन रूपकों का प्रयोग करते हैं। इनकी राष्ट्रीय कविताएं आलंकारिक सौन्दर्य से भी युक्त है। अलंकार सौन्दर्य के कारण कविता कहीं भी अस्पष्ट और दुरूह नहीं होती। इन्होंने अपनी कविताओं में छंदों का प्रयोग भी किया है। जैसे- संस्कृत के छंद, हिन्दी

के छंद आदि इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने कविताओं में रुबाइयों का प्रयोग भी किया है तो इस तरह से भाषा की दृष्टि से, विषय की दृष्टि से माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य विभिन्न चरणों से होते हुए अलग-अलग रूपों में कभी राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होकर, कभी प्रकृति प्रेम से जुड़ी, कभी श्रृंगार परक रचनाएं, तो कभी मानवतावादी भावभूमि पर आधारित होकर विभिन्न पक्षों को लेती हुई इनकी कविताओं ने सम्पूर्ण साहित्य जगत को अपनी भावधारा से अनुप्राणित किया। काव्यभाषा का अध्ययन काव्य तत्त्व व उनकी कसौटियों के आधार पर किया जाता है। अतः उन्हीं कसौटियों के आधार पर यहाँ इनकी काव्यभाषा का अध्ययन किया गया है।

रस

रस काव्य का प्रथम व प्रमुख तत्त्व है। रस के द्वारा ही हम काव्य का रसास्वादन करते हैं। रस के अभाव में काव्य नीरस हो जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रधानतः वीर रस का प्रयोग हुआ है। रामाधार शर्मा जी कहते हैं कि, "माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में शांत, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसों का निरूपण नहीं हो सका है। वीर, करुण, वात्सल्य और कुछ सीमा तक हास्य रस ही उनके काव्य में स्थान पा सके हैं। सात्विक प्रवृत्तियों के कारण रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रसों के लिए तो उनके काव्य मंदिर का द्वार बंद रहा और

जीवन के प्रति कर्मठ दृष्टिकोण होने के कारण वे विरक्तिमूलक शांति का उपदेश न दे सके।"[15] माखनलाल चतुर्वेदी जी द्वारा प्रयोग किए गए रसों के उदाहरण इस प्रकार है-

1. वीर रस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है और यह उत्साह माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में विभिन्न पक्षों को लेकर काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है जैसे- नौजवानों को जेल ले चलने का उत्साह, नारियों द्वारा देश के प्रति बलिदान होने का उत्साह आदि।

स्वाधीनता संकल्प के लिए 'जवान' को यदि प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो वह उसे जननी जन्मभूमि के लिए पवित्र सुयोग समझकर स्वीकार कर लेता है। 'तिलक' कविता की कुछ पंक्तियाँ-

"बलि होने की परवाह नहीं,
मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूँ,
माता के हाथ स्वराज्य रहे।"[16]

स्थायी भाव	विभाव		अनुभाव	संचारी भाव
	आलम्बन	उद्दीपन		
बलिदान की तीव्र इच्छा का उत्साह	ब्रिटिश हुकूमत	शासकों द्वारा अत्याचार, शोषण, दमन	शत्रु को पराजित करना	कष्ट को धृति, गर्व आदि के साथ सहते रहना

प्रस्तुत पक्तियों में कवि ने स्वयं को बलिदानी कहा है। यहाँ वीर रस अपने सम्पूर्ण अवयवों के साथ निष्पत्ति को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार यहाँ दी गयी सभी काव्य पंक्तियों में वीर रस के अवयव शामिल हैं। अतः सभी वीर रस से परिपूर्ण है।

"विश्व है असि का नहीं, संकल्प का है,
हर प्रलय का कोण काया-कल्प का है।
फूल गिरते, शूल सिर ऊँचा लिए हैं,
रसों के अभिमान को नीरस किये हैं।
खून हो जाए न तेरा देख पानी,
मरण का त्यौहार जीवन की जवानी।"[17]

देश की परतंत्रता यहाँ विभाव रूप में है, तो नौजवानों से कवि का बलिदान के लिए आग्रह अनुभाव है। कवि हृदय में स्थिर राष्ट्रीय भावना व उत्साह, स्थायीभाव है और भारतीयों के यातना पूर्ण जीवन का अमर्ष ही यहाँ संचारी या व्यभिचारी भाव है।

कवि देश के नौजवानों का गुणगान करते हुए कहते हैं कि हे! राष्ट्र के यौवन भारत की सीमाओं से तुम्हारे शौर्य की गूँज सुनाई दे रही है उन्हें उत्साहित करते हैं, उनमें जोश का संचार करते हैं, कि-

"देश के 'शुच्यग्र' पर कुर्बान हो उठती जवानी,
देश की मुस्कान पर बलिदान 'राजा और रानी।
अमित मधु-आकर्षणों का ज्वार हरि वंशी बजाए,
स्वर भरे कश्मीर उसमें, भैरवी नेपाल गाए।
मोह ले मन को हमारे नेह का गांधार प्रहरी,
और लंका से हमारी सिंधु-सी हो प्रीत गहरी।
आज तेरे नेह पर, असहाय का अभिमान ठहरा,
दीन का ईमान ठहरा, पीड़ितों का मान ठहरा।
चरणतल में भूमि ठहरी, शीश पर भगवान ठहरा।
एक अंगुली के इशारे अखिल हिंदुस्तान ठहरा।"[18]

***

"वह मरा कश्मीर के हिम-शिखर पर जाकर सिपाही,
बिस्तरै की लाश तेरा और उसका साम्य क्या?
पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ उठ आज उसका गान करतीं,
घाटियों पगडंडियों से नित नई पहचान करतीं,
खाइयाँ हैं, खंदकें है, जोर है, बाल है भुजा में,
पाँव हैं मेरे, नई राहें बनाते जा रहे हैं।"[19]

***

"मातृभूमि में तेरी मूरत
देख सभी सह जाऊँगा,
दे लें दण्ड आर्य बालक हूँ
मस्तक नहीं झुकाऊँगा।"[20]

***

"क्या मैं उसको माफ करूँगा जो मेरी चोटी से खेले,
जो मेरी सभ्यता, संस्कृति, उदय गान को पीछे ठेले?
आओ आज हिमालय ने निज महामौन को तोड़ पुकारा,
रक्त चाहिए, रक्त चाहिए, बहने दो बलि-पंथी धारा।"[21]

***

"उठ ओ युग की अमर साँस, कृति की नव आशा,
उठ ओ यशो विभूति, प्रेरणा की अभिलाषा,
तेरी आँखों सजे विश्व की सीमा-रेखा
अंगुलियों पर रहे, जगत की गति की लेखा।"[22]

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में मूलतः वीर रस की ही सृष्टि हुई है। वे राष्ट्र के लिए अपनी आवाज को बुलंद करते हैं और लोगों में राष्ट्र की भावना को जगाते हैं उसे और अधिक दीप्त करते हैं।

2. करुण रस

माखनलाल चतुर्वेदी जी एक राष्ट्र प्रेमी कवि हैं और एक राष्ट्रीय कवि की कविताओं में शोक का संबंध, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक ह्रास विषयक होता है। देश की दयनीय अवस्था को देखकर कवि का मन दुखित हो जाता है और वेदना में परिवर्तित हो जाता है। चूंकि माखनलाल चतुर्वेदी जी राष्ट्रीय कवि होने के कारण प्रधान रूप से वीर रस के कवि हैं। जिसका स्थायी भाव उत्साह होता है। जिसमें शोक के लिए स्थान नहीं रह जाता किन्तु राष्ट्रीय कवि भावुक भी होता है देश के प्रति। इसलिए उसकी कविताओं में करुण रस का होना स्वाभाविक होता है। इनकी राष्ट्रीय कविताओं में करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु अल्प मात्रा में। भारत के इतिहास में जब 1943 ई. में 'बंगाल का अकाल' पड़ा। उस घटना से कवि का हृदय शोक में डूब गया। अकाल से पीड़ित देशवासियों को देख कवि की लेखनी अत्यंत भावुक हृदय से अभिव्यक्ति करती है-

"उसी बंग को, आज समय क्या भूखा मारे!

वही बंग क्या आज दर-बदर हाथ पसारे?

उसी बंग के बेटे-बेटी बेचे जावें?

महतर की गाड़ियाँ, मृतक-शव खैंचे जावें?

देश बंग की भूख, भीख की भाषा मत गिन!

पीड़ित भू को देख, पतन परिभाषा मत गिन!"[23]

3. हास्य रस

स्वतंत्रता पश्चात नेताओं द्वारा राजनीति में गांधी जी के सिद्धांतों की आड़ में जो देश की धज्जियां उड़ाई जा रही है उस पर कवि कहीं-कहीं हल्के व्यंग्य के साथ हास्य की भी सृष्टि करते हैं। जैसे इन पक्तियों में-

"इक-इक पद पर सौ-सौ टूटे, कहै कबीरा सुनो भाई साधो,

अपनी इस अनमोल अकल पर, रामराज्य का स्वाँग न बांधो।"[24]

हम कह सकते हैं कि माखनलाल चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य में वीर, करुण रस के अतिरिक्त कहीं-कहीं रौद्र, हास्य, वीभत्स आदि रसों का प्रयोग कवि की विभिन्न मन:स्थितियों के अनुसार होता है परंतु इनकी कविताओं में सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना की व्यापकता मुखरित है इसलिए इनकी कविताओं में वीर रस की प्रधानता है। अतः माखनलाल चतुर्वेदी जी रसाभिव्यक्ति में पूर्णतः सफल रहे हैं।

अलंकार

राष्ट्रीय कविताओं की एक विशेषता यह है कि उसे निरलंकृत माना गया है। इस संबंध में रामाधार शर्मा जी का अभिमत है कि, "बिना किसी उक्ति-वैचित्र्य के कवि अपने हृदय के उमड़ते हुए वेग को व्यक्त करता है। अलंकारादि के व्यवधानों से भावों की सहज प्रेषणीयता में बाधा ही पहुँचती है। परंतु, राष्ट्रीय कवि अपने हृदय के भावांदोलन को श्रोता या पाठक में भी भर देना चाहता है। इसलिए वह सीधे, सरल शब्दों में अपने हृदय के भावावेग को व्यक्त कर देता है। प्रत्येक राष्ट्रीय कवि में यह निरलंकृत अभिव्यक्ति पाई गई है।"[25] माखनलाल चतुर्वेदी जी जब-जब अपनी राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रकृति के उपमान व प्रतीकों के माध्यम से करते हैं तब-तब उनकी कविताओं में अलंकार का प्रयोग बढ़ जाता है और प्रकृति उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता को अभिव्यक्त करती हुई प्रतीत होती है। इनकी कविता में प्रकृति की शक्ति और उसके पुरुषार्थ दोनों रूपों का भाव हमें मिलता है। कवि की राष्ट्रीय कविताओं में विविध अलंकारों का कुशल प्रयोग मिलता है। काव्य में अलंकारों के प्रयोग को लेकर चतुर्वेदी जी बहुत सतर्क या बहुत लापरवाह नहीं रहे हैं। वे अलंकारों का भी नियोजन करते रहे। जिस प्रकार उनके काव्य में अन्य काव्य तत्त्व स्वतः ही आते हैं। उसी प्रकार अलंकार प्रवृत्ति भी उनके काव्य में स्वतः आ जाती है। अलंकारों का अल्पमात्रा में प्रयोग केवल

उनके स्वतंत्रता पूर्व रचनाओं में ही दिखाई देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रचित काव्यों में अलंकारों का प्रयोग माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अत्यंत सुंदर ढंग से किया है। इनकी राष्ट्रीय कविताओं में तीन प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा पाश्चात्य अलंकार। शब्दालंकार के अंतर्गत कवि ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, वीप्सा, पुनरुक्ति तथा अर्थालंकारों के अंतर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अपह्नुति आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

शब्दालंकार

1. अनुप्रास अलंकार

अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग चतुर्वेदी जी ने इन पंक्तियों में किया है-

"तरु-तृण उठे बावले होकर।"[26]

2. यमक अलंकार

कवि ने तिलक शब्द में यमक अलंकार का सुंदर नियोजन किया है-

"बस इतना कहना मान तिलक
हम तेरे सिर पर तिलक करें।"[27]

3. पुनरुक्ति अलंकार

"मन धक-धक की माला गूँथे"[28]

***

"जागृत कर बार-बार

फिर कर मनुहार, हार।"[29]

धक-धक में और बार-बार में पुनरुक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।

4. श्लेष अलंकार

"तू 'मित्र'-प्रमत्त-करों से

ग्रीष्म में प्राण सुखाता,

पर उसका स्वागत गाकर

किरनों पर अर्घ्य चढ़ाता।"[30]

जो किरणें गर्मी में अपने ताप से हमारे प्राणों को सुखाती हैं, उन्हीं किरणों का स्वागत हम अर्घ्य देकर करते हैं। इसमें 'प्रमत्त करों' व अर्घ्य' पद में श्लेष अलंकार है। जिसका अर्थ है सूर्य की प्रचंड किरणें व अंग्रेजों का अनियंत्रित कर (टैक्स) दोनों हमारे प्राणों को सुखाने वाली है फिर भी हम उनका स्वागत अर्घ्य (सम्मान) देकर करते हैं।

इन उदाहरणों में हमने देखा कि कवि ने अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति व श्लेष का कैसा सुंदर प्रयोग किया है। अलंकार काव्य के शोभा कारक होते हैं। समग्र रूप से हम कह सकते हैं कि माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओ में अलंकार का सुंदर प्रयोग किया है।

अर्थालंकार का प्रयोग

1. उपमा अलंकार

"मसलकर अपने इरादों-सी, उठाकर

दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे।"[31]

'इरादों-सी', में कवि ने उपमा का सौन्दर्यपूर्ण विधान किया है। जिससे काव्य उपमा से दीप्त हो रहा है।

2. रूपक अलंकार

"बलि होने में वज्र-हृदय हो,

करते लख खींचा-तानी,

राष्ट्र देवि! करने आयी हो

क्या मुझको पानी-पानी?"[32]

यौवन रूपी पथिक, व्रज रूपी हृदय, राष्ट्र रूपी देवि इत्यादि रूपक के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

3. उत्प्रेक्षा अलंकार

"धुँए से लिपटी-लिपटी यह चपल प्रात
मानो संध्या के रथ पर बैठी-सी आयी।"[33]

इस प्रकार अर्थालंकार के अंतर्गत कवि ने उपमा, रूपक व उत्प्रेक्षा की सफल योजना की है।

पाश्चात्य अलंकार का प्रयोग

1. मानवीकरण

"उतर पड़ी गंगा खेतों खलिहानों तक,
मानो आँसू आए बलि-महमानों तक।"[34]

गंगा को यहाँ मनुष्य के क्रिया-व्यापार की तरह चित्रित किया गया है।

इस तरह देखें तो चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में शब्द व अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है। अलंकारों के सफल नियोजन से चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं का सौन्दर्य और सुगठित व निखर कर आता है। अलंकार काव्य के शोभा कारक तो होते ही होते हैं, उसमें चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं। कविता में अलंकारों का विधान किसी बात को और अधिक सुंदर व प्रभावपूर्ण रूप से कहने के लिए किया जाता है।

छंद

काव्य सृजन के क्षणों में माखनलाल चतुर्वेदी जी छंदों के प्रति सजग नहीं रहे हैं। वे छंदों को काव्य स्वरूप के विकास में बाधा मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य में छंदों का कभी सायास प्रयास नहीं किया है। काव्य लेखन के दौरान भावों के अनुकूल जो छंद बन पड़े हैं, वही छंद उनके काव्य में हमें दिखाई पड़ते हैं अर्थात् उनका काव्य सर्वथा छंदों के भार से दबा या बिल्कुल छंद मुक्त नहीं है। इस संबंध में डॉ. रामाधार शर्मा जी कहते हैं कि, "छंदों की दृष्टि से तो यह कवि बहुत निराश कर देता है। ऐसी कविताएं अत्यल्प हैं जिनमें छंदों का सयत्न प्रयोग हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के हृदय में भावनाएं जिन शब्दों में और जितने शब्दों में उठीं, उनको ही कवि ने कलम के घाट से काव्य की धारा में उतार दिया है। उनका परिष्कार और सुधार कर उन्हें शास्त्रीय रूप देने की उसने अधिक चिंता नहीं की। जो बात जैसी निकल गई वह ठीक है। इसलिए उनकी अनेक रचनाओं में छंद के शास्त्रीय रूप का आभास तो मिल जाता है, परंतु उसका शुद्ध रूप एक-दो पदों में ही आ पाता है और इन एक-दो पदों के आधार पर ही अनुमान लगाना पड़ता है कि कवि का अभिप्रेत छंद यही है।"[35] कवि की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त छंद भेदों को देखने से पहले यहाँ छंदों की गणना के कुछ नियम देखेंगे जो इस प्रकार है-

मात्रा- किसी भी ध्वनि के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। छंद के संदर्भ में मात्रा दो प्रकार की होती है- लघु और गुरु। जिसके चिन्ह इस प्रकार हैं-

1. लघु- **।** 2. गुरु- **s**

कविता के निर्धारण में मात्राओं की, की जाने वाली गणना में इन्हीं का प्रयोग किया जाता है। लघु व गुरू के सामान्यतः कुछ नियम होते हैं। जैसे-

लघु नियम

- ह्रस्व स्वर लघु होते हैं तथा इनके संयोग से बने व्यंजन भी लघु होते हैं। जैसे- अ, इ, उ, क, कि, कु आदि।
- संयुक्ताक्षर के पहले का वर्ण जिस पर बलाघात नहीं पड़ता, लघु माना जाता है। जैसे- 'हनुमन्त' शब्द में 'म' लघु है।
- चन्द्रबिन्दु युक्त व्यंजन लघु माने जाते हैं। जैसे- हँस में 'हँ' लघु है।

गुरु नियम

- दीर्घ स्वर व उनके संयोग से निर्मित व्यंजन दीर्घ माने जाते हैं। जैसे- आ, ई, ए, ऐ, का, की, के, कै आदि।
- बलाघात से प्रभावित लघु व्यंजन गुरु हो जाता है। जैसे- 'गुरु' में 'रु' लघु होते हुए भी बलाघात के कारण दीर्घ है।

- संयुक्ताक्षर में 'हलन्त्' के पूर्व का वर्ण दीर्घ होगा। जैसे- 'विष्णु' शब्द में 'वि' दीर्घ है।
- 'रेफ' के पहले का लघु गुरु हो जाता है। जैसे- 'मर्म', 'कर्म' शब्दों में म, क, गुरु है।
- विसर्गान्त सभी गुरु होते हैं। जैसे- दु:ख में 'ख' गुरु है।

यति- छंद में युक्त विराम को यति कहते हैं। सामान्यतः इसका संबंध उच्चरित लय से होता है।

गति- छंद में लयात्मक गीति प्रवाह को गति के नाम से जाना जाता है। मात्रिक छंदों के लिए गति नितांत महत्त्वपूर्ण है।

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त छंद व उनके भेद इस प्रकार हैं-

2)संस्कृत एवं हिन्दी परंपरा के शास्त्रीय एवं नवीन छंदों का प्रयोग

3)मुक्त(मनमाने) छंद का प्रयोग

4)मिश्रित छंदों का प्रयोग

5)**उर्दू प्रभावित छंदों का प्रयोग**

संस्कृत एवं हिन्दी परंपरा के शास्त्रीय एवं नवीन छंदों का प्रयोग- इस प्रकार के छंदों का प्रयोग कवि ने किया है किन्तु अल्प मात्रा में। ये छंद प्रायः मात्रिक छंद के वर्ग के हैं जिसमें घनाक्षरी, रोला, छप्पय, रूपमाला, कुण्डलिया, ताटंक, हरिगीतिका, श्रृंगार, सार, अरिल्ल तथा राधिका आदि। इन छंदों का प्रयोग माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी

राष्ट्रीय कविताओं में किया है। कवि द्वारा राष्ट्रीय कविताओं में प्रयोग किए गए प्रमुख छंद इस प्रकार हैं-

1. हरिगीतिका छंद

इस छंद में 16-12 की यति से 28 मात्राएं होती हैं। चरण के अंत में लघु-गुरु का नियम है।

s s । s ।। s । s s s । s । । s।s=16+12=28

"है दीन भारत को जगाने, आ चुकी अब भारती,

***

।।।। s । s s।s s s। s s s । s = 16+12=28

बढ़कर ही किया चाहते हैं, कार्य विद्यार्थी व्रती।

***

s । s s s s। ss s । s s s। s =16+12=28

ये ब्रह्मचारी धीर-धारी, आत्म-त्यागी देख लो,

***

s s। ss s। ss ।। ।ss s। s =16+12=28

ये वीर चेता, शीघ्र चेता, गुण-विजेता देख लो।

***

।।s। s । । s । । । । । s । ।। s s । s =16+12=28

अवरूद्ध उन्नति-मार्ग मिलकर, शीघ्र अपना खोल दो।

***

s ।। । ss s। s ।। s। s ।। s। s =16+12=28

होकर हमारे साथ 'भारत वर्ष की जय!' बोल दो।"[36]

2. पद्धरि छंद

इस छंद के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएं होती हैं।

"तुम भी देते हो तोल-तोल!
नभ से बिजली की वह पछाड़,
फिर बूँदें बनना गोल-गोल
नभ-पति की सारी चकाचौंध,
उस पर बूँदों का मोल-तोल
बूँदों में विधि के मिला बोल।
तुम भी देते हो तोल-तोल।"[37]

3. घनाक्षरी छंद

इस छंद के प्रत्येक चरण में 32 वर्ण होते हैं तथा 16-16 वर्णों पर यति का नियम होता है। चरण के अंत में लघु वर्ण होता है।

"गो-गण सँभाले नहीं जाते मतवाले नाथ,
दुपहर आई वर-छाँह में बिठाओ नेक।

वासना-विहंग बृज-वासियों के खेत चुगे,

तालियाँ बजाओ आओ मिलके उड़ाओ नेक।

दम्भ-दानवों ने कर-कर कूट टोने यह,

गोकुल उजाड़ा है, गुपाल जू बसाओ नेक।

मन कालीमर्दन हो, मुदित गुवर्धन हो,

दर्द-भरे उर-मधुपुर में समाओ नेक।"[38]

4. रोला छंद

इस छंद में पंक्तियों के प्रत्येक चरण में 13 और 11 के क्रम से 24 मात्राएं होती हैं। चरण के अंत में गुरु होता है।

"ये कलरव कोमल कंठ सुहाने लगते हैं,

वेदों की झंझावात नहीं भाती मुझको।

संध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं,

सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको।"[39]

मुक्त(मनमाने) छंद का प्रयोग- माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में अतुकांत छंदों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे-

"आँखों में है रौद्र,

हृदय में वीर, कंठ में करुणा,

घटनाओं की आग,

सुखाती आशाओं का झरना।"[40]

उपर्युक्त छंद के प्रथम चरण में 11, द्वितीय चरण में 17, तृतीय चरण में 16 तथा चतुर्थ चरण में 12 मात्राएं हैं। अतः इन काव्य पंक्तियों में कोई लय नहीं है न ही कोई तुक है अतः यहाँ कवि द्वारा लय की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है इसलिए यहाँ मुक्त छंद है।

मिश्रित छंदों का प्रयोग- माखनलाल चतुर्वेदी जी ने दो या दो से अधिक छंदों का मेल कर नवीन छंद का निर्माण किया है। जिसका प्रयोग वे अपनी राष्ट्रीय कविताओं में भी करते हैं। जैसे-

1. **कुसुम और वीर छंदों का मिश्रण**

कुसुम छंद, 16-14 के क्रम से 30 मात्राओं का छंद होता है और वीर छंद, 16-15 के क्रम से 31 मात्राओं का छंद होता है। कवि ने अपनी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में इन दोनों छंदों का मिश्रण कर एक नया छंद बनाया है। इस कविता की प्रारम्भिक चार पंक्तियाँ कुसुम छंद और अंतिम दो पंक्तियाँ या चरण वीर छंद है।

"चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर, चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ!
मुझे तोड़ लेना वन-माली,
उस पथ पर तुम देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,

जिस पथ जावें वीर अनेक।"[41]

उर्दू प्रभावित छंदों का प्रयोग

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में उर्दू से प्रभावित छंदों का प्रयोग भी दिखाई देता है। उर्दू छंदों के अंतर्गत उन्होंने गज़ल, रुबाई आदि छंदों का प्रयोग किया है।

अतः हमने देख सकते हैं कि इनकी राष्ट्रीय कविताओं में मात्रिक छंदों को विशेष रूप से स्थान मिला है।

बिम्ब

बिम्ब का काव्यभाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। बिम्ब का अर्थ होता है- अंतर्मन में उत्पन्न होने वाली प्रतिमा और आकृति। बिम्ब सदैव कल्पना का सहारा लेकर भाषा के माध्यम से काव्य में प्रकट होता है। जिससे काव्य का सौंदर्य निखर जाता है। कवि ने भी अपने काव्य में बिम्ब का प्रयोग किया है। माखनलाल चतुर्वेदी जी का प्रकृति प्रेम राष्ट्रीयता की भावना के साथ सहयोग बनाते हुए बिम्ब के माध्यम से इनकी भाषा में इस प्रकार प्रकट होता हुआ दिखाई देता है-

"वह कली के गर्भ से, फल-

रूप में, अरमान आया!

देख लो मीठा इरादा, किस

तरह, सिर तान आया!

डालियों ने भूमि रुख लटका

दिये फल, देख आली!

मस्तकों को दे रही

संकेत कैसे, वृक्ष-डाली!

फल दिये? या सिर दिये? तरु की कहानी,

गूँथ कर युग में, बताती चल जवानी।"[42]

प्रतीक

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति प्रति+इक से हुई है। 'प्रति' का अर्थ है अपनी ओर और 'इक' का अर्थ है झुका हुआ। जब किसी वस्तु को हम देखते हैं और देखने के पश्चात हमें उस वस्तु के विषय में और अधिक ज्ञान हो तब उसको प्रतीक कहते हैं। साधारण शब्दों में प्रतीक को संकेत भी कहते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी ने प्रतीक के विषय में लिखा है कि "प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला न तो संकेत मात्र है और न ही उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरूप है। यह उसका जीता जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपर्युक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का अवसर मिल जाता

है। प्रतीकों का प्रयोग भाषा में केवल किन्हीं चमत्कारों द्वारा अधिक क्षमता लाने के उद्देश्य से नहीं किया जाता और न इससे उसमें उक्ति वैचित्र्य का ही समावेश कराया जाता है।"[43] माखनलाल जी जब अपने मनोभावों को किसी कारण से कविता में अभिव्यक्त नहीं कर पाते तो वे प्रतीक का सहारा लेते हैं-

"किन्तु एक मैं भी हूँ
किसी वृक्ष का छोटा दाना;
मुझको है महलों जैसे ही
मिट्टी में मिल जाना;"[44]

यह पंक्तियाँ 'विद्रोही' कविता से ली गई है जिसमें कवि एक विद्रोही और एक वृक्ष में समानता को देखते हुए, वृक्ष को विद्रोही का प्रतीक माना है।

एक अन्य उदाहरण-

"कहाँ देश में हैं वशिष्ठ जो तुझको ज्ञान बतायें?
किए गए नि:शस्त्र, किसे कौशिक रण-कला सिखावें?"[45]

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों के अवयवों के अनुरूप है। जिसमें उन्होंने रस, अलंकार, छंद, बिम्ब व प्रतीक का भाषायी दृष्टि से उन्नत प्रयोग किया है।

- **रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय कविता की भाषा का स्वरूप**

रामधारी सिंह दिनकर जी की भी राष्ट्रीय कविताओं की भाषा के स्वरूप को जानने से पूर्व हम उनकी राष्ट्रीय कविताओं के संग्रह को देख लेते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. रेणुका
2. हुंकार
3. सामधेनी
4. बापू
5. दिल्ली
6. परशुराम की प्रतीक्षा
7. चक्रवाल
8. नीलकुसुम

रामधारी सिंह दिनकर जी के इन काव्य संग्रहों में इनकी राष्ट्रीय चेतना से संबंधित कविताएं संकलित हैं। मुख्य रूप से 'हुंकार', 'सामधेनी', 'दिल्ली' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं के सबंध में डॉ. देवराज शर्मा जी कहते हैं कि, "दिनकर की कविता का मूल स्वर क्रांति है। ओजस्वी

शैली में राष्ट्रीय भावनाओं की महान अभिव्यक्ति इनके काव्य की अन्यतम उपलब्धि है। जन-जन जागरण का नव-स्वर और नव-चेतना भरना दिनकर के राष्ट्रीय काव्य का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इनकी कविता प्रगति और निर्माण के पार्श्व स्पर्श करती हुई, अविराम गति से समय के उतार-चढ़ाव और गहरे खड्डों और चट्टानों को पाटती-तोड़ती आगे बढ़ी है। उसमें एक विलक्षण संदेश है, जीवन को एक निश्चित पथ पर बढ़ने की महान अन्तश्चेतना का दिव्य संदेश है।"[46] दिनकर जी एक ऐसे शब्द शिल्पी शब्द साधक कवि हैं, जिनकी भाषा पर असाधारण पकड़ है। दिनकर जी के काव्य की विशेषताओं पर यदि दृष्टिपात करें तो वे राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं और उनके काव्य में मुख्य रूप से राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। यह न सिर्फ दिनकर जी के काव्य की विशेषता है बल्कि उनके व्यक्तित्त्व का सबसे मजबूत पक्ष भी है। दिनकर जी का मानना था कि राष्ट्रीयता हमारा सबसे बड़ा धर्म है और परतंत्रता हमारी सबसे बड़ी समस्या। वे अपनी भाषा को अपने भावों व विचारों की अनुगामिनी बना कर जिस रूप में चाहते हैं उस रूप में ढाल देते हैं। काव्य-भाषा के संबंध में दिनकर जिस भाषा पर बल देते हैं, वह है सर्वसाधारण की भाषा, आमजन की भाषा, सामान्य जन की भाषा। इस विषय में दिनकर जी कहते हैं कि "अगर कविता की रूह अलंकार और काव्यात्मक भाषा से भिन्न वस्तु है, तो कवि को उनके ऊपर अपना दारोमदार नहीं रख के, रोज की बोली में अपनी मनोदशा का चित्र उपस्थित करना होगा। ऐसा

नहीं चल सकता कि काव्यात्मक भाषा के प्रयोग द्वारा कवि का अपना परिश्रम तो घट जाए और पाठक के चित्त तक पहुँचने के लिए आवरण तोड़ने को परिश्रम करना पड़े।"[47] अर्थात् काव्यभाषा इतनी दुरूह और कठिन नहीं होनी चाहिए कि पाठक को उसे समझने में कठिनाई हो। दिनकर की भाषा का जो तेवर है, जो ओजस्विता है, वह हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की अकेली अद्भुत व अद्वितीय है। दिनकर जी की कविता त्याग, बलिदान एवं राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। दिनकर जी को काव्यभाषा का संस्कार उनके पूर्ववर्ती कवि या छायावाद के कवि सुमित्रानंदन पंत और महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्यभाषा का संस्कार है। वे अपने इन पूर्वज कवियों के भाषायी तेवर को अपनाते हैं। किसी कवि की भाषा पर पकड़ जितनी गहरी होती है, भावों की अभिव्यक्ति क्षमता उसकी उतनी ही ज्यादा और पूर्ण होती है। दिनकर जी की भाषायी पकड़ ही उनको एक ओजस्वी कवि के रूप में स्थापित करती है। अपने पूर्वज कवियों से सीखे भाषायी संस्कार के विषय में वे स्वयं कहते हैं- "पंत और निराला ने कविता की जो भाषा प्रस्तुत की, वह ठीक उसी रूप में आगे के कवियों को स्वीकृत नहीं हुई किन्तु मेरी या बच्चन की कविताओं की भाषा भी छायावादी युग के प्रयोगों से शिक्षा लेकर तैयार हुई है और इस युग ने छंदों में तो इतनी विविधता उत्पन्न की, कि सचमुच ही, हिन्दी-कविता की वीणा सहस्र तारोंवाली हो गयी।"[48] दिनकर जी को सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' से

विरासत में जिस भाषा का संस्कार मिलता है। वह एक तरफ सुकोमल है तो दूसरी तरफ सुगठित व्यंजक एवं गंभीर अर्थ को धारण करने वाली संस्कृतनिष्ठ भाषा है। दिनकर जी जितने बड़े शब्द शिल्पी हैं, उतने ही बड़े शब्द रसिक भी हैं। वे शब्दों में जो भाव की धारा प्रवाहित करते हैं, वह निर्जीव को भी सजीव कर सकने की क्षमता रखती है। यही कारण है कि उनकी भाषा में एक तरह का प्रवाह तो दिखाई ही पड़ता है, दूसरी तरफ एक उल्लास व प्रखर वेग दिखाई देता है जो अंदर से श्रोता और पाठक को आड़ोलित कर देता है। शब्दों की रसमयता पर दिनकर जी कहते हैं कि-

"ये शब्द मद्य-रस जीवी हैं, जितनी पीते
संकेत-सुरा उतना ही खेल दिखाते हैं"[49]

दिनकर जी ने शब्दों को मद्य रस जीवी कहा है। अर्थात शब्द मद्य रूपी रस का पान करके जीने (भाव प्रकट करने) वाले होते हैं और शब्द जितने अपने अंदर संकेत रूपी भावों को समाहित करके रखते हैं उनका चमत्कार उतना ही बढ़ता जाता है और वे उतने ही भाव गंभीर प्रभावशाली होते हैं। दिनकर जी की राष्ट्रीय कविता की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। दिनकर जी को शब्दों की अंतरात्मा का ज्ञान है। दिनकर की काव्य भाषा पर डॉ. सावित्री सिन्हा जी लिखती हैं कि- "दिनकर की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है अभिव्यक्ति की स्वच्छता। इस अभीष्ट की प्राप्ति उन्होंने

सर्वत्र ऋजु, सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दों के प्रयोग द्वारा की है। चाहे उनकी भाषा हुंकार की आग बरसा रही हो, रसवंती के रस की अभिव्यक्ति के लिए शब्द खोज रही हो, जीवन के वैषम्यों और कठोर यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अकुला रही हो अथवा कुरुक्षेत्र और उर्वशी के अंतर्मन्थन को रूप देने की चेष्टा कर रही हो, उसकी गतिमयता, सरसता, और प्रसन्न गंभीरता में अंतर नहीं आता। दिनकर को शब्दों की अंतरात्मा का ज्ञान है; यह कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उनमें अपने भावों को शब्दों में भर देने की सामर्थ्य है। उनके द्वारा प्रयुक्त भावगर्भित शब्द अपने चारों ओर एक वातावरण का निर्माण कर देते हैं। उनके शब्द ससंदर्भ भावगर्भित, अर्थ-गर्भित और चित्रमय होते हैं तथा उनका शब्दकोश समृद्ध, व्यापक और अक्षय है। विभिन्न पर्यायों के प्रयोगों की कुशलता और उपयुक्तता उन्हें कुशल भाषा-शिल्पी सिद्ध करती है।"[50] दिनकर जी शब्दों की अपेक्षा भावों पर अधिक ध्यान देते हैं। कविता के कथ्य के अनुकूल भाषा के चयन में दिनकर सिद्धहस्त हैं। सुस्पष्ट व सुगठित भाषा उनकी लेखनी से सहज ही निसृत हुई है। दिनकर का ध्यान शब्दों की अपेक्षा भावों पर अधिक केंद्रित है। अपने शब्द चयन को लेकर दिनकर जी स्वयं कहते हैं कि "शब्द तो मेरे भी अनेक होते थे और मुझे भी उनके बीच चुनाव करना पड़ता था। किन्तु शब्दों का चयन मैं उनके रूप नहीं, सामर्थ्य के कारण करता हूँ।"[51] यदि काव्य शैली की बात करें तो दिनकर जी ने दोनों ही शैलियों, प्रबंध और

मुक्तक को प्रस्तुत किया है। दिनकर जी की प्रारम्भिक काव्यभाषा उनके उत्तरवर्ती काव्यभाषा से शिथिल दिखाई पड़ती है। किन्तु बाद के काव्यों की उनकी काव्यभाषा उत्तरोत्तर प्रौढ़ होते हुए गंभीरता की शिखर की ओर बढ़ती गई है और उसमें निरंतर कसावट आती गई है। उसमें तत्समता की प्रवृत्ति बढ़ती गई है। दिनकर भाषायी प्रयोग को लेकर बड़े सजग कवि हैं। वे शब्दों को बड़ा ही सँजोकर रखते हैं। भावों के अनुरूप भाषा का चयन दिनकर जी की अन्यतम विशेषता है। यहाँ दिनकर जी की प्रारम्भिक और उत्तरवर्ती काव्यभाषा का नमूना प्रस्तुत है-

दिनकर जी की प्रारम्भिक भाषा का स्वरूप-

"विश्व-विभव की अमर वेलि पर
फूलों-सा खिलना तेरा।
शक्ति-यान पर चढ़कर वह
उन्नति-रवि से मिलना तेरा।
भारत! क्रूर समय की मारों
से न जगत सकता है भूल।
अब भी उस सौरभ से सुरभित
हैं कालिंदी के कल कूल।"[52]

दिनकर जी की उत्तरवर्ती भाषा का स्वरूप-

"गरजो, अम्बर को भरो रणोंच्चारों से,

क्रोधांध रोर, हाँको से, हुंकारों से।

यह आग मात्र सीमा की नहीं लपट है,

मूढ़ो! स्वतंत्रता पर ही यह संकट है।"[53]

दिनकर जी की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ. सरला परमार ने लिखा है कि "दिनकर आधुनिक कवियों में भाषा सम्राट हैं। भाषा की सफ़ाई उनकी अपनी विशेषता है। वे मानते हैं की गद्य की अपेक्षा काव्य की भाषा अधिक व्यंजक और साफ होती है। वह कल्पना, भावोद्रेक, चित्र और काव्यात्मक अनुभूति की भाषा होती है।"[54]

दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा सिर्फ काव्य भाषा नहीं है बल्कि वह चेतना संपन्न काव्य भाषा है। जो भावों से इतनी तेज, इतनी लदी हुई है कि उसमें स्वतः ही एक स्फूर्ति दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि दिनकर जी की भाषा भावों के अनुरूप अपने स्वरूप को ग्रहण करती चलती है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा मूलतः खड़ी बोली हिन्दी है। जिसे "उन्होंने पूर्ववर्ती एवं समकालीन-देशी-विदेशी, भाषाओं, विभाषाओं, एवं बोलियों के शब्दों एवं प्रयोगों से समुचित मात्रा में सम्पन्न कर विशिष्ट गरिमा प्रदान की है। स्मरणीय है कि दिनकर जी ने खड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य उन्हीं शब्दों को अपनाया है जो अधिकांशतः सहज, सरल एवं जनता की बोली में घुले

मिले हैं। सर्वसाधारण में प्रचलित अनेक विदेशी शब्दों को भी अपनाया है, परंतु विशेषता यह है कि जिन विदेशी शब्दों को अपनाया है उन्हें खड़ी बोली की प्रकृति, ध्वनि, परंपरा एवं व्याकरणिक व्यवस्था के अनुरूप ही अपनाया है।"[55]

रस

काव्यभाषा को सम्पन्न करने वाले उपादानों में रस का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। दिनकर जी मुख्य रूप से ओज के कवि हैं। उनके काव्य में वीर रस का अत्यधिक मात्रा में उपयोग हुआ है। वीर रस में ओजगुण पाया जाता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है। वीभत्स का स्थायी भाव घृणा और रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है। जैसे ही ये भाव हमारे चित्त को जागृत करते हैं, वैसे ही हमारा चित्त उत्साह से भर जाता है। इसलिए वीर, वीभत्स और रौद्र रस को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए काव्य में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाता है। दिनकर जी को इसलिए राष्ट्रकवि के नाम से जाना जाता है क्योंकि इनके काव्य में वीर रस की प्रधानता है। इनकी राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त रस इस प्रकार से हैं-

1. वीर रस

दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में गर्जन का विशाल स्वर सुनायी देता है और यही उनके काव्य की विशेषता उन्हें सबसे अलग कर

'दिनकर' बनाकर राष्ट्रीय कवि बना देती है। वीर रस की लहर कैसे इनकी राष्ट्रीय कविताओं में हिलोरें लेती है। इनकी 'दिगंबरी' कविता 'हुंकार' काव्य संग्रह में संकलित है। जिसमें वीर रस के सभी अवयव विद्यमान है।

"जरा तू बोल तो, सारी धरा हम फूँक देंगे,

पड़ा जो पंथ में गिरी, कर उसे दो टूक देंगे"[56]

स्थायी भाव	**विभाव**		**अनुभाव**	**संचारी भाव**
	आलम्बन	**उद्दीपन**		
सृष्टि को दो टूक करने का अस्वाभाविक उत्साह	ब्रिटिश शासन सत्ता	शासकों द्वारा अत्याचार, शोषण, दमन	शत्रु पर प्रहार करना	उग्रता, आवेग, उत्साह आदि

अतः यहाँ वीर रस की निष्पत्ति हुई है। इसी प्रकार दिनकर जी की सभी ओजपूर्ण कविताऐं वीर रस से परिपूर्ण हैं।

परतंत्रता के दु:ख से पीड़ित दिनकर जी शोक प्रकट करते हैं और हिमालय से देश की कारुणिक दशा पर प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि-

"उस पुण्य-भूमि पर आज तपी

रे, आन पड़ा संकट कराल,

व्याकुल, तेरे सुत तड़प रहे

डस रहे चतुर्दिक विविध काल।

कितनी मणियाँ लुट गईं? मिटा

कितना मेरा वैभव अशेष।

तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर

वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।"[57]

***

"दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा,

लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।

जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलायेगी ही,

अम्बर पर घन बन छायेगा ही उच्छ्वास तुम्हारा।

और अधिक ले जाँच, देवता इतना क्रूर नहीं है;

थक के बैठ गये क्या भाई! मंजिल दूर नहीं है"[58]

***

"धुँधली हुई दिशाएँ, छाने लगा कुहासा,

कुचली हुई शिखा से आने लगा धुँआ-सा।

कोई मुझे बता दे, क्या आज हो रहा है?

दाता, पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे;

बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।

प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।

चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ।[59]

दिनकर जी की ओजस्वी, क्रांतिकारी और उत्साहित करती हुई अभिव्यक्ति कवि के शब्दों में प्रस्तुत है-

"वैराग्य छोड़ बाहों की विभा संभालो,

चट्टानों की छाती से दूध निकालो।

है रुकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,

पीयूष चंद्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।

चढ़ तुंग शैल-शिखरों पर सोम पियो रे।

योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे।"[60]

आज़ादी के बाद भारत की स्थिति और देश के नेताओं के प्रपंचों को देखकर एक बार फिर कवि चित्कार करता है और भ्रष्ट नेताओं को फिर से देशवासियों के क्रांतिकारी स्वरूप की याद दिलाते हुए कहते हैं-

"हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,

साँसों के बाल से ताज हवा में उड़ता है,

जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ?

वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।"[61]

इसी स्वर में एक अन्य अभिव्यक्ति-

"लेकिन होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,

जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है;

दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"[62]

2. भयानक रस

जहां क्रोध, डर व भय का संचार हो वहां भयानक रस होता है। परशुराम के पराक्रम के सामने कर्ण डर से कांप उठता है-

"तू अवश्य क्षत्रिय है, पापी! बता, न तो, फल पायेगा,

परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा,

क्षमा, क्षमा, हे देव दयामय! गिरा कर्ण गुरु के पद पर,

मुख विवर्ण हो गया, अँग काँपने लगे, भय से थर-थर।"[63]

3. **हास्य रस**

स्वाधीन शासन सत्ता के प्रति व्यंग्यात्मक हास्य इन पक्तियों में देख सकते हैं-

"इधर-उधर झूमता, घूमता मस्ती या पस्ती में,

आखिर जाता पहुँच उसी कोलाहल की बस्ती में-

जिसकी मौजें बेमिसाल, चुहलों की शान गजब है।

सचमुच 'सेंट्रल हाल' देश का बड़ा सियासी क्लब है।"[64]

दिनकर जी ने रसों को काव्य में उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए अधिकांशतः प्रसाद गुण से युक्त भाषा का ही प्रयोग किया है। दिनकर जी ऐसी भाषा का प्रयोग पाठक व श्रोता तक अपने भावों को स्पष्ट रूप से पहुंचाने के लिए करते हैं। अतः हमने देखा कि दिनकर जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में रसों की अभिव्यक्ति सफलतापूर्वक की है।

अलंकार

अपने काव्य में व्यंजना शक्ति को बढ़ाने के लिए दिनकर जी ने अलंकारों का भी प्रयोग किया है। अलंकार के संबंध में दिनकर जी कहते हैं "अलंकार शब्द से वैसे तो आवश्यक बनाव-शृंगार की भी कमी निकलती है, किन्तु कविता में अलंकारों के प्रयोग का वास्तविक उद्देश्य अतिरंजना नहीं, वस्तुओं का अधिक से अधिक सुनिश्चित वर्णन ही होता है। साहित्य में जब भी हम संक्षिप्त और सुनिश्चित होना चाहते हैं, तभी रूपक की भाषा हमारे लिए स्वाभाविक हो उठती है।"[65] किन्तु दिनकर जी जब अलंकार का प्रयोग अपनी राष्ट्रीय कविताओं में करते हैं तो उसको देखने के बाद ऐसा लगता है कि अलंकार स्वतः ही उनके काव्य में आ जाते हैं। "दिनकर जी ने जिन अलंकारों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, वे अलंकार किसी सुनिश्चित योजना का परिणाम नहीं अपितु भावनाओं के अप्रतिहत प्रवाह में बह कर चले आये रत्न-कण हैं। उनकी रचनाओं की भाषा अलंकारों की इस स्वाभाविकता के कारण कहीं भी कृत्रिम नहीं हो

पायी है, और न उनके भाव अस्पष्ट अथवा अवरूद्ध हो सके।"[66]दिनकर जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में शब्दालंकार के अंतर्गत अनुप्रास (छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास), यमक, श्लेष, वीप्सा, पुनरुक्ति, वक्रोक्ति आदि तथा अर्थालंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, व्यतिरेक इत्यादि अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया है। दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त प्रमुख अलंकार इस प्रकार से हैं-

1. श्लेष अलंकार

जहाँ एक शब्द में दो अर्थ निकले वहाँ श्लेष अलंकार होता है। जैसे-

"पुण्य खिलता है चंद्रहास की विभा में तब,
पौरुष की जागृति कहाती धर्म-युद्ध है।"[67]

यहाँ पर 'चंद्रहास की विभा' के दो अर्थ हैं एक तलवार की चमक और दूसरा विभावरी अथवा क्रांति की जागृति।

2. वीप्सा अलंकार

जब दु:ख, आश्चर्य, आदर, हर्ष, शोक, इत्यादि जैसे विस्मयादिबोधक भावों को व्यक्त करने के लिए शब्दों की पुनरावृत्ति की जाए तब उसे वीप्सा कहते हैं-जैसे यहाँ 'कदम-कदम' में वीप्सा है।

"पर कदम-कदम पर खड़ा यहाँ पातक है
हर तरफ लगाये घात खड़ा घातक है।"[68]

3. पुनरुक्ति अलंकार

नगर-नगर जल रही भट्टियाँ,

घर-घर सुलग रही चिनगारी;

यह आयोजन जगद्दहन का,

यह जल उठने की तैयारी

देश-देश में शिखा क्षोभ की

उमड़-उमड़ कर बोल रही,

लरज रहीं चोटियाँ शैल की,

धरती **क्षण-क्षण** डोल रही।"[69]

इन पंक्तियों में 'नगर-नगर', 'घर-घर', 'देश-देश', 'उमड़-उमड़', 'क्षण-क्षण' आदि शब्दों में पुनरुक्ति अलंकार है।

4. पदमैत्री अलंकार

"धुँधली हुई दिशाएं छाने लगा कुहासा,

कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँ-सा।"[70]

दोनों पक्तियों के अंत में पदमैत्री (समान पद) का प्रयोग किया गया है।

5. व्यतिरेक अलंकार

उपमान की अपेक्षा उपमेय के वैशिष्ट्य निदर्शन में व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे-

"निर्वाक् है हिमालय, गंगा डरी हुई है।

निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है।"[71]

अतः हम यहां इन उदाहरणों के माध्यम से देख सकते हैं कि, किस प्रकार दिनकर जी ने अलंकारों का प्रयोग कर अपनी कविताओं के नाद सौंदर्य को उत्पन्न कर अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

छंद

दिनकर जी छंद प्रयोग के सिद्ध हस्त कवि हैं। कविता में छंद के प्रयोग को लेकर कवि कहते हैं कि, "कविता में से छंद की महिमा अभी विलुप्त नहीं हुई है। किन्तु अच्छी कविता बिना छंद के भी लिखी जाती है।"[72] दिनकर जी ने अपनी कविताओ में विविध छंदों का प्रयोग किया है। दिनकर जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में परंपरागत, मिश्रित तथा नवीन छंदों के प्रयोग के साथ छंद मुक्त काव्य का भी सृजन किया है। परंपरागत छंदों के अंतर्गत उन्होंने अधिकांश रूप में मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। जिसमें पद्धरि, गीतिका, सार, सरसी, हरिगीतिका, रोला, रूपमाला, ताटंक, दिगम्बरी आदि शामिल हैं। कवि द्वारा प्रयोग किये गए कुछ प्रमुख छंद इस प्रकार से हैं-

1. पद्धरि छंद

यह 16 मात्राओं का छंद होता है। इसके अंत में जगण होता है। 'हिमालय' कविता में प्रयुक्त पद्धरि छंद की कुछ पंक्तियाँ-

s s । s । s। । । s। =16

“साकार, दिव्य, गौरव विराट,

***

s s। s । s s। s । =16

पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!

***

s s । । s s । । । s । =16

मेरी जननी के हिम-किरीट!

***

ss s।। s s । s । =16

मेरे भारत के दिव्य भाल!”[73]

मिश्रित छंद का प्रयोग- मिश्रित छंद, वह छंद होता है। जिसमें दो अलग-अलग प्रकृति वाले छंदों के योग से एक नए छंद को तैयार किया जाता है। दिनकर जी ने दो विभिन्न छंदों का मिश्रण बड़ी ही कुशलता से अपनी कविता ‘भारत का आगमन’ में किया है। उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

“तुम आए, जैसे आते सावन के मेघ गगन में,

तुम आए, जैसे आता हो संन्यासी मधुवन में।

तुम आए, जैसे आवे जल-ऊपर फूल कमल का,

तुम आए, भू पर आवे ज्यों सौरभ नभ-मण्डल का।

निज से विरत, सकल मानवता के हित में अनुरत-से,

भारत! राजभवन में आओ, सचमुच, आज भरत-से।

हवन-पूत कर में सुदंड नव, जटाजूट पर ताज,

जगत देखने को आयेगा, संन्यासी का राज।"[74]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में प्रारंभ के छः चरण सरसी छंद के हैं, जबकि शेष दो चरणों में सार छंद का प्रयोग हुआ है। सरसी छंद मात्रिक छंद के अंतर्गत आता है। जिसके प्रत्येक चरण में 27 मात्राएं होती हैं और 16-11 मात्रा पर यति होती है। अंत में एक गुरु और एक लघु आता है। सार छंद मात्रिक छंद का सबसे लोकप्रिय छंद है। इसके प्रथम चरण में कुल 16 मात्राएं तथा दूसरे चरण में कुल 12 मात्राएं होती हैं। 16-12 पर यति होती है। अतः दिनकर जी ने छंदों का मिश्रण करके सुंदर प्रयोग किया है।

नवीन छंद- दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में नवीन छंदों का प्रयोग भी मिलता है। जिसके अंतर्गत अतुकांत, मुक्तक, चतुष्पदी आदि का प्रयोग दिनकर जी करते हैं। उनके नवीन छंदों के तीन विकास रूप दिखाई देते हैं। दिनकर जी के नवीन छंद विधान को लेकर यतीन्द्र तिवारी जी लिखते हैं कि, "प्रथम के अंतर्गत उन्होंने प्राचीन लयों के आधार पर नवीन चरण संख्या और क्रमयोजन को निर्धारित कर नवीन छंद की एक निश्चित इकाई बना दी है, जिसकी आवृति प्रत्येक आगामी

छंद की इकाई में होती है। दूसरी स्थिति में उन्होंने अन्त्यानुप्रास या तुक से मुक्ति प्राप्त कर ली है। तुक-विहीन काव्य-सृजन की इस परंपरा को आलोचकों ने 'अतुकांत' काव्य सृजन परंपरा भी कहा है। इन अतुकांत छंदों में छंद की इकाइयां चरण विस्तार निश्चित होता है, केवल चरणांत में 'तुक' का प्रयोग नहीं किया जाता है और साथ-साथ चरण के अंत में भावपूर्ण करने के प्रतिबंध को भी नहीं माना जाता है।"[75] छंद मुक्त काव्य के रूप में दिनकर जी के 'नये सुभाषित, परशुराम की प्रतीक्षा, हारे को हरिनाम' आदि काव्य संग्रह छंद एवं तुक रहित हैं। दिनकर जी की तीसरी परिस्थिति में "स्वच्छंद-छंदों का विकास हुआ है। इन छंदों में लयाधार तो निश्चित रूप से प्राचीन छंदों से ही ग्रहण किया गया है। पर चरण विस्तार और चरण संकुचन पूर्ण रूप से दिनकर जी पर ही निर्भर रहा है। ऐसे छंदों को कुछ विद्वानों ने 'विषम-छंदों' की संज्ञा भी दी है। छंद की यह मुक्त गति वर्तमान हिन्दी छंदों की नवीन महत्वपूर्ण धारा है।"[76] ऐसे छंदों का उपयोग दिनकर जी ने अपने काव्य-संग्रह 'आत्मा की आँखें', 'शीपी और शंख' और 'हारे को हरिनाम' काव्य-संग्रह में किया है। इसके अतिरिक्त लावनी, बहर, गजल जैसे लोक प्रचलित छंदों का प्रयोग भी कवि ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में किया है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि दिनकर जी ने "परंपरागत छंदों का प्रयोग ओज और श्रृंगार की रचनाओं में हुआ है। जिन किन्हीं स्थलों पर उनके राग और विचारों में उलझाव हुआ है। वहाँ वे तुकांतता भूल कर

मिश्रित छंदों की ओर ही बढ़े हैं....दिनकर की परंपरागत छंद योजना आंतरिक रागों और अनुभूतियों को स्पंदन और प्राण देती है, तथा नवीन छंद योजना बौद्धिक चिंतन को सुस्थिरता, और दृढ़ता से व्यक्त करने की ताकत।"[77]

बिम्ब

दिनकर जी ने अपने काव्य में बिंबों का भी सफल प्रयोग किया है। इनकी काव्य पंक्तियों में प्रयुक्त बिम्ब इस प्रकार है-

"युग-युग अजेय, निर्बंध मुक्त,
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान,
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान?"[78]

यहाँ हिमालय का चित्र एक बिम्ब की तरह निरूपित किया गया है। बिम्ब में हिमालय की विराटता, महानता और उसके अजेय स्वरूप का निदर्शन होता है।

प्रतीक

दिनकर जी अपनी राष्ट्रीय कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग भी किया है जैसे हम देख सकते हैं कि -

"जहाँ-जहाँ घन-तिमिर हृदय में
भर दो वहाँ विभा प्यारी,
दुर्बल प्राणों की नस-नस में
देव! फूँक दो चिनगारी।"[79]

कवि ने यहाँ घन, तिमिर व चिनगारी को प्रतीक रूप में प्रयोग किया हैं। घन तिमिर (अंधकार) यहाँ विसंगतियों, समस्याओं का प्रतीक है तो चिनगारी यहाँ समस्याओं, विसंगतियों से मुक्ति का प्रतीक है। चिनगारी प्रतीक है क्रांति की, बदलाव की, प्रकाश की, मुक्ति की। इस तरह से कवि ने अपने काव्य में अनेकानेक प्रतीकों का प्रयोग किया है।

इस प्रकार हमने माखनलाल चतुर्वेदी और रामधारी सिंह दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त रस, अलंकार, छंद, बिम्ब व प्रतीक इत्यादि को देखा। अब आगे हम उनकी राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त शब्द शक्ति, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, कल्पनात्मकता, भावनात्मकता, काव्य गुण व शब्द समूह इत्यादि की दृष्टि से इन दोनों कवियों की राष्ट्रीय कविता की भाषा को देखेंगे।

(ख) शब्द-शक्ति

काव्य में शब्द और अर्थ का संबंध विशिष्ट होता है। शब्द एवं अर्थ की विवेचना करने में व्याकरण न्याय और मीमांसा शास्त्र प्रमुख हैं। शब्द में अर्थ का बोध करने वाली शक्ति शब्द शक्ति कहलाती है। डॉ. योगेंद्र

प्रताप सिंह का अभिमत है कि, "पद तथा पदार्थ के बीच निश्चित एवं नियत संबंध है। ये संबंध व्यवहार में परंपरा से चले आ रहे हैं। पद तथा पदार्थ के इन नियत संबंधों के आधार पर वक्ता, आकांक्षा-योग्यता, सन्निधि तथा तात्पर्य से जुड़कर शब्दों का प्रयोग करता है। ये शब्द उक्त आकांक्षा-योग्यता आदि के क्रम में अपने को व्यक्त करने की सामर्थ्य से परिपूर्ण होते हैं। उनकी इसी परिपूर्णता का नाम शब्द शक्ति है।"[80] काव्यशास्त्र में शब्द की अर्थबोधक शक्ति-अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना तीन मानी गयी है। इनसे निकलने वाले अर्थों को क्रमशः अभिधेयार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ कहा जाता है। इन्हीं तीनों माध्यमों में शब्द-शक्ति का पूरा क्रिया-व्यापार समाहित है। इन भेदों के आधार पर ही शब्दों के तीन प्रकार होते हैं-वाचक, लक्षक, व्यंजक। इसी पर आधारित शब्दों के तीन अर्थ भी होते हैं। इसे हम तालिका के माध्यम से इस प्रकार देख सकते हैं-

शब्द-शक्ति	**शब्द**	**अर्थ**
(1)अभिधा	वाचक	वाच्यार्थ
(2)लक्षणा	लक्षक	लक्ष्यार्थ
(3)व्यंजना	व्यंजक	व्यंग्यार्थ

'तात्पर्य' नामक शब्द शक्ति को चतुर्थ शब्द शक्ति के रूप में कुछ आचार्य मान्यता प्रदान करते हैं। शब्द शक्ति का दूसरा नाम, व्यापार भी है।

निष्कर्षतः शब्द-शक्ति का महत्त्व उसमें समाहित अर्थ पर निर्भर होता है। कोई भी शब्द बिना अर्थ के अस्तित्वविहीन तथा निरर्थक होता है। शब्द-शक्ति में शब्द में निहित इसी अर्थ की शक्तियों पर विचार किया जाता है। कविता में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ ग्रहण से ही काव्य आनंददायक बनता है। अतः हम देखते हैं कि शब्द के अर्थ को समझना ही कविता के आनंद को प्राप्त करने की प्रधान सीढ़ी है और कवि को शब्द की शक्तियों की जानकारी होना आवश्यक है।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपने काव्य में तीनों शब्द शक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। किन्तु राष्ट्रीय काव्य में अधिकांश रूप में लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्ति का प्रयोग किया है। इस संबंध में रामखिलावन तिवारी जी लिखते हैं कि, "हमारा कवि अपनी बात सीधे-सीधे ढंग पर कहना प्रायः नहीं जानता, वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी न किसी व्यंग्य का सहारा लेता है। यहीं पर आकर हमें कवि की शैली का उत्कर्ष दिखाई देता है।"[81]वहीं एक अन्य लेखक डॉ. विनय मोहन शर्मा का अभिमत है, "चतुर्वेदी जी की शैली शब्दों की अभिधा पर नहीं,

लक्षणा और अभिव्यंजना पर ही अपनी साँसे गिनती है।"[82] किन्तु कवि ने अपने काव्य में तीनों शब्द-शक्तियों का प्रयोग किया है।

अभिधा

अभिधा शब्द शक्ति को काव्य में प्रथमा शब्द शक्ति के रूप में स्थान प्राप्त है। प्रथमा शब्द शक्ति इसलिए कहा जाता है कि कविता को पढ़ने के बाद जो प्रथम अर्थ निकलता है उसे ही अभिधा कहते हैं। चतुर्वेदी जी की 'मरण त्यौहार' कविता में प्रयुक्त अभिधा शब्द शक्ति को हम देख सकते हैं। जो 1928 ई. में रचित है-

"ले कृषक-संदेश, कर बलि वंदना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना
घूमता चरखा लिये, गिरी पर चढ़ो
ले अहिंसा-शस्त्र आगे ही बढ़ो।"[83]

इन काव्य पंक्तियों को पढ़ने पर इसके भाव बिना किसी व्यवधान के स्पष्ट हो जाते हैं। कृषक संदेश, बलिदान की वन्दना ध्वज की अर्चना, सत्य अहिंसा के साथ आगे बढ़ने की अपील है। यहाँ कविता का भाव प्रथम अर्थ में ही निकाल रहा है, अर्थात् इसमें अभिधार्थ है।

इसी प्रकार कवि ने अपनी कविताओं में अभिधा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जिनको पढ़ते ही कविता में प्रयुक्त भाव का सीधा-सीधा अर्थ ज्ञात होता है। जिसके अन्य उदाहरण निम्न प्रकार से हैं -

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।।"[84]

माखनलाल चतुर्वेदी जी उग्र विचारधारा के कवि थे। किन्तु वे गांधी जी से व उनके सिद्धांतों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उनके लिए कवि के मन में असीम सहानुभूति व श्रद्धा थी। कवि गांधी जी के व्यक्तित्त्व को ध्यान में रखकर लिखते हैं-

"तेरी अंगुली हिली, हिल पड़ा, भावोन्मुक्त जमाना,
अमर शांति ने अमर क्रांति अवतार तुझे पहचाना।
है तेरा विश्वास गरीबों का धन, अमर कहानी,
तो है तेरा श्वाँस, क्रांति की प्रलय लहर मस्तानी।

कंठ भले हो कोटि-कोटि, तेरा स्वर उनमें गूँजा,

हथकड़ियों को पहन राष्ट्र ने पढ़ी क्रांति की पूजा।"[85]

कवि तत्कालीन 'कश्मीर समस्या' पर भी कविता लिखते हैं-

"वह नेपाल, प्रलय का प्रहरी, भारत का बाल, भारत का शिर,

वह कश्मीर की जिस पर काले-पीले उजले मेघ रहे घिर।

आज अचानक अमरनाथ के शिर से उतर रही युग-गंगा,

उठे देश दे दो परिक्रमा, कहती है भैरवी कि फिर-फिर।"[86]

भारत सदियों से सम्पूर्ण विश्व को आत्मज्ञान, प्रभुत्व तथा सहृदयता का पाठ सिखाता रहा है। अतः कवि अतीत गौरव की रक्षा के लिए, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए न केवल भारतवासियों बल्कि सम्पूर्ण एशियाखंड के निवासियों को भी स्वाधीनता के लिए कटिबद्ध करते हुए प्रेरणा देता है-

"सागर की बाँहें लाँघ हैं, तट-चुंबित भू-सीमा,

तू भी सीमा लाँघ, जगा एशिया, उठा भुज भीमा!

आज हो गयी धन्य प्रबल हिन्दी वीरों की भाषा,

कोटि-कोटि सिर कलम किये फूली उसकी अभिलाषा।

जग कहता है तू विशाल है तू महान, जय तेरी,

लोक-लोक से बरस रही तुझ पर पुष्पों की ढेरी।"[87]

राष्ट्र का प्रत्येक कण स्वतंत्रता के लिए आतुर हो सर्वस्व समर्पित कर बलिदान होने के उमंग में झूम रहा है। इस उमंग के माध्यम से ही कवि भारतवासियों को उत्साहित करने का प्रयास करते हैं और लिखते हैं-

"तेरा पहरेदार, विंध्य का दक्षिण, उत्तर,
तेरी ही गर्जना, नर्मदा का कोमल स्वर।
तेरी जीवित साँस, आज तुलसी की भाषा,
तेरा पौरुष सतत, अमर जीवन की आशा।
जाग, जाग, उठ तपी तुझे जग का आमंत्रण,
विभु दे तुझको उठा सौंपकर अमृत के कण।"[88]

***

"वे कश्मीरी कस्तूरी के मृग भागे-भागे फिरते हैं,
केसर के सुहाग-खेतों में अरि के अंगारे घिरते हैं।
आज विस्तता के पानी में लग न उठे आगी लो धाओ,
गर्व न करो उच्च शिखरों का केसरिया बन उन्हें बताओ।"[89]

इसी प्रकार-

"माँ, रोवे मत शीघ्र लौट
घर आऊँगा प्रस्थान करूँ,
बाबा दो आशीश, पताका
पर सब कुछ कुरबान करूँ।

लौटूँगा मैं देवी, हाथ में

विजय-पताका लाऊँगा,

कष्ट, प्रवास, जेल जीवन की

तुमको कथा सुनाऊँगा।"[90]

एक नौजवान देश सेवा के लिए घर से प्रस्थान कर रहा है, तो घर में माँ-बाबा से वादे और आशीष लेते हुए कहता है कि ध्वज पर स्वयं को कुर्बान करने के साथ विजय यात्रा से वापस आकर आप सबको इस विजय यात्रा की कथा सुनाऊँगा। इन पंक्तियों को प्रथम बार पढ़ने पर ही इनका अर्थ स्पष्ट है अतः यहाँ अभिधा शब्द शक्ति है।

"उठ-उठ तू ओ तपी, तपोमय जग उज्ज्वल कर,

गूँजें तेरी गिरा कोटि भवनों में घर-घर।

गौरव का तू मुकुट पहिन

युग के कर-पल्लव,

तेरा पौरुष जगे, राष्ट्र

हो उन्नत अभिनव।"[91]

कवि नवयुवकों को राष्ट्र के लिए समर्पित होने के लिए उनमें उत्साह का संचार करते हुए कहता है कि हे! तपी-तपस्वी उठकर अपने तपों में तेज से संसार को दीप्त करो और तुम्हारी वाणी हर घर-घर में गूँजे गौरव के मुकुट तुम्हारे सिर पर सजें इस प्रकार तुम्हारी पौरुष से राष्ट्र उन्नत हो समृद्ध हो।

अभिधात्मक कविताएं कवि ने अन्यत्र भी लिखा है। जैसे- 'आज चीन को मज़ा चखा दें' कविता में कवि कहते हैं-

"चलो उठो अब प्रलय-रागिनी गा दें, सागर को दहला दें,

आज चीन को भारत से भिड़ने का थोड़ा मज़ा चखा दें।"[92]

अप्रस्तुतों से मुक्त होकर जहां कवि जीवन की परिस्थितियों के चित्रण में प्रवृत होता हैं, वहाँ अभिधा शब्द शक्ति पूर्णता को प्राप्त होती है। कवि यहाँ सीधे-सीधे भारतीयों को आह्वान कर रहे हैं विशेष रूप से नौजवानों, नवयुवकों को लक्ष्य करके वे काव्य-सृजन करते हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में अभिधा शब्द-शक्ति के अन्य उदाहरण और भी हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

"बेच मत देना जवानी, बेच मत देना इशारे,

बेच मत देना किसी को, ऐ सुधी, सपने हमारे।

विश्व की हाटों हमारे प्राण का नीलाम मत हो,

और 'उनके' स्वार्थ पर जग में कठिन संग्राम मत हो।

रक्त से मीठे सलोने आज श्रम सीकर न जाने,

लो उठो, गाओ, घिरो, छाओ, रचो बलि-पथ सुहाने!"[93]

***

"प्यारे भारत देश!

गगन गगन तेरा यश फहरा,

पवन पवन तेरा बल गहरा,

क्षिति जल नभ पर डाल हिंडोले,

चरण-चरण संचरण सुनहरा,

ओ ऋषियों के त्वेष!

प्यारे भारत देश!!"[94]

इस प्रकार से माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में अभिधा शब्द शक्ति का सुंदर समन्वय हुआ है। अभिधा शब्द शक्ति द्वारा कवि अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम और समर्पण के भावों की सुंदर अभिव्यक्ति करते हैं।

लक्षणा

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपने भावों को प्रभावपूर्ण बनाने का सफल प्रयास करते हुए अपनी राष्ट्रीय कविताओं में लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग भी किया है। लक्षणा शब्द शक्ति की विस्तार से चर्चा मैंने प्रथम अध्याय में की है। यहाँ मैं लक्षणा के उन्हीं भेद की चर्चा कर रही हूँ, जिसका प्रयोग माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं मे किया है। लक्षणा शब्द-शक्ति के दो भेद होते हैं- रूढ़ा एवं प्रयोजनवती लक्षणा। प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद होते हैं- गौड़ी एवं शुद्धा लक्षणा। गौड़ी लक्षणा में मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ में सादृश्य का संबंध होता है। गौणी लक्षणा के भी दो भेद किए गए हैं-सरोपा और साध्यावसाना।

माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग यहाँ प्रस्तुत है-

शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा

"बंग-युग से, कोटि शिर झुकते जहाँ
भूल पथ, उस पांडिचेरी ने कहा।"[95]

यहाँ कहने की क्रिया पांडिचेरी से कराई जा रही है जो कि कह नहीं सकता क्योंकि वह मनुष्य न हो कर स्थान विशेष है। अतः यहाँ कहने की मुख्य क्रिया में बाधा आ रही है। तब हमें प्रयोजनवश पांडिचेरी का अर्थ पांडिचेरी में रहने वाले लोगों से लेना पड़ता है अर्थात यहाँ पांडिचेरी न कहकर वहाँ के रहने वाले लोग कह रहे हैं। अतः यहाँ मुख्यार्थ बाधित होने से 'पांडिचेरी' और 'कहा' में लक्षणा शब्द शक्ति है।

रूढ़ा लक्षणा का उदाहरण

"आग उगलती उधर तोप,
लेखनी इधर रसधार उगलती।"[96]

यहाँ जैसे 'आग उगलती तोप'। तोप से आग तो नहीं निकलती किन्तु उससे निकलने वाली ज्वालाओं को भी आग के रूप में रूढ़ कर दिया गया है और उसे आग ही मान लिया जाता है। इसी तरह लेखनी के संदर्भ में भी बात रूढ़ हो गई है कि 'लेखनी रसधार उगलती' है जबकि उगलना

शब्द लेखनी के साथ रूढ़ हो गया है जबकि उगलने की क्रिया लेखनी की नहीं है बल्कि उससे लिखने की क्रिया की जाती है।

गौड़ी सारोपा लक्षणा

"तारों के हीरे गुमे मेघ के घर से
जब फेंक चुके सर्वस्व तभी तुम बरसे!"[97]

गौड़ी लक्षणा में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के बीच किसी न किसी सादृश्य संबंध का होना आवश्यक है। तारे यहाँ उपमेय हैं, हीरे उपमान हैं, किन्तु सादृश्यता के कारण तारों को हीरा मान लिया गया है, अर्थात् जो गौण है, उसे जब किसी सादृश्यता या समानता के कारण मुख्य मान लिया जाए तब गौड़ी सारोपा होती है।

"श्वान के सिर हो-चरण तो चाटता है!
भोंक ले-क्या सिंह को वह डाँटता है?
रोटियाँ खायीं कि साहस खा चुका है,
प्राणी हो, पर प्राण से वह जा चुका है।
तुम न खेलो ग्राम-सिंहों में भवानी!
विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी!"[98]

जहाँ सादृश्य का आधार प्रमुख रहता है, और उपमेय का लोप करके मात्र उपमान का कथन होता है। वहाँ गौड़ी साध्यवसाना लक्षणा होती है, जैसे इस कविता में श्वान यहाँ प्रतीक है चाटुकारिता करते हुए लोगों का जो

अपने स्वार्थ के लिए किसी की भी चाटुकारिता करते हैं इसलिए वे कभी सिंह नहीं हो सकते सिंह यहाँ प्रतीक है स्वाभिमान का। जो दूसरों की चरण वन्दना करते हैं उनमें कभी स्वाभिमान नहीं हो सकता।

'रक्त-वाहिनी' कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं जिनमें लक्षणा की सुंदर छटा है-

"भुजदण्डों की रक्त-वाहिनी उठ कि सम्हलकर देख,
मेंहदी-सा अपने यौवन को कुचल-कुचल कर देख,
उठ आएँ जी में अनबोली ज्वारों के आवेग
पतवारों-सा बीच धार को चीर की चल कर देख!"[99]

कवि नवयुवकों को संबोधित करते हुए कहता है कि, ये जो तुम्हारे भुजदंड हैं। इन्हें तुम ध्यान से देखो। इसमें कैसे रक्त वाहिनी का संचार हो रहा है, और जैसे मेंहदी में रंग उसे कुचलने से आती है। वैसे ही तुम अपने युवावस्था के रंग को निखारो अर्थात् अपने देश हित में उसे लगाओ और जो तुम्हारे अंदर आवेगों का ज्वार है, उसे निखर कर आने दो वही आवेग इस देश का पतवार बनकर उसे मुक्ति दिला सकता है। यहाँ 'मेहंदी की लालिमा' का संबंध नौजवानों के उत्साह से है। उसी प्रकार- ज्वारों के प्रबल आवेग, पतवारों-सा, धार को चीर इनका संबंध क्रमश: उत्साह, नवयुवक या नौजवान, परतंत्रता की तत्कालीन समस्याओं से है।

'खोने को पाने आए हो' कविता की कुछ पंक्तियाँ-

"आशा ने जब अंगड़ाई ली,

विश्वास निगोड़ा जाग उठा"[100]

यहाँ 'आशा का अँगड़ाई लेना' लक्षणा शब्द-शक्ति है। क्योंकि आशा अंगड़ाई नहीं लेती यहाँ मुख्यार्थ में बाधा है। अतः यहाँ अन्यार्थ की अभिव्यक्ति है, इसलिए लक्षणा शब्द शक्ति है।

'कैदी और कोकिला' कविता की कुछ पंक्तियाँ जिसमें कवि ने लक्षणा शब्द शक्ति का सुंदर प्रयोग किया है-

"दूबों के आँसू, धोती रवि-किरनों पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाती उस उदण्ड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा।"[101]

'दूबों के आँसू' पद में दूब एक निर्जीव पदार्थ है, जबकि रोने की क्रिया सजीव होती है। अतः यहाँ दूब के आँसू पद के मुख्यार्थ बाधित होकर लक्ष्यार्थ दूबों पर पड़े ओस कणों का अर्थ प्रकट कर रहे हैं। 'धोती रवि किरणों पर' धोने की क्रिया सूरज की किरणों के साथ बताया गया है, जबकि किरणों के प्रभाव से ओस बिन्दु स्वतः सुख जाते हैं। यहाँ धोने की क्रिया में ओस कणों के गिरने (सूखने) का अर्थ प्रकट हो रहा है। इस प्रकार उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में लक्षणा शब्द-शक्ति का समावेश है।

इस तरह माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग सशक्त व सफल रूप में हुआ है। जब किसी विशेष बात को लक्ष्य करके कोई बात कही जाए तो वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति होती है। चतुर्वेदी जी लक्षणा शब्द शक्ति के सफल कवि हैं ।

व्यंजना

व्यंजना शब्द शक्ति काव्य की सबसे उत्तम शब्द शक्ति मानी जाती है। व्यंजना शब्द शक्ति में से काव्य में भावों की ध्वन्यात्मकता झंकृत होती है। जब काव्य में कोई विशेष अर्थ ध्वनित या व्यंजित होता है तो तब उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। अभिधा, लक्षणा के अर्थ दे चुकने के बाद जो अर्थ ध्वनित होता है वह व्यंजना या व्यंग्यार्थ कहलाता है। माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा कविताओं में प्रयोग किये गए व्यंजना शब्द शक्ति की काव्य पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत है-

"टुकड़ों पर जीवन की श्वासें?
कितनी सुंदर दर है!
हूँ उन्मत्त, तलाश रहा हूँ,
कहाँ वधिक का घर है?"[102]

यहाँ 'टुकड़ों पर जीवन की श्वाशें' लक्ष्यार्थ है, जो अंग्रेजी शासन की कृपा पर अपना जीवन बिताना, उनकी चापलूसी करना और राष्ट्र को नुकसान

करना आदि के संदर्भ में अभिव्यक्त हुआ है। जिसकी यहाँ कवि ने निंदा करते हुए व्यंग्य किया है।

"यह पताका है

उलझती है, सुलझती जा रही है,

जिंदगी है यह,

कि अपना मार्ग आप बना रही है!

मौत लेकर मुट्ठियों में, राक्षसों पर टूटता हूँ।"[103]

'मौत' शब्द में वाच्यार्थ (मृत्यु) एवं लक्ष्यार्थ (निडरता, निर्भीकता) के बाधित होने से व्यंजना शब्द शक्ति से यहाँ मौत का तात्पर्य तलवार निकलता है कि, सैनिक/ सिपाही/ देशप्रेमी अपनी मुट्ठियों में मौत नहीं बल्कि तलवार लेकर राक्षसों यानि दुश्मनों, अन्यायी, अत्याचारी, दुराचारी, पर प्रहार करता है। यहाँ मौत शब्द में तलवार की व्यंजना हो रही है।

गुणीभूत व्यंग्य

गुणीभूत व्यंग्य, वह व्यंग्य होता है। जहाँ काकु या वाच्यार्थ से अर्थ प्रस्फुटित हो, इसमें वाच्यार्थ ही प्रधान रहता है। व्यंग्य यहाँ एक गुण की तरह पाया जाता है। जैसे इन पक्तियों में-

"स्नेह सिंधु की नादों को सुन, हृदय हिमालय तज अपना।

व्याकुल होकर दौड़ पड़ी क्या ये दोनों गंगा-जमुना।"[104]

यहाँ वाच्यार्थ का ही अर्थ, प्रधान अर्थ हो रहा है किन्तु गंगा-यमुना में नेत्रों का व्यंजित होना गुणीभूत व्यंग्य है।

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में शब्द शक्ति के तीनों रूपों अभिधा, लक्षणा व व्यंजना का पूर्ण सामंजस्य के साथ सफल प्रयोग किया है। चतुर्वेदी जी अपने शब्दों में अपने युगानुरूप शक्तियों को समाहित करते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप वे अपने काव्य में अभिधा, लक्षणा व व्यंजना को स्थान देते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

शब्द शक्ति सिर्फ शब्दों की शक्ति नहीं होती बल्कि वह कवि की भी शक्ति होता है। कवि अपने कवित्त शक्ति का प्रयोग इन शब्दों के माध्यम से करता है। काव्य सिर्फ शब्दों का समुच्चय नहीं है, बल्कि शब्दों का भावनुकूल चयन व उनकी सुसंबद्धता भी है। इन शब्दों में बिम्ब व प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा कभी अभिधा, लक्षणा तो कभी व्यंजना को व्यंजित करता है। दिनकर के प्रारम्भिक रचनाओ में अभिधा की प्रवृति अधिक दिखाई पड़ती है किन्तु धीरे-धीरे उनका काव्य लक्षणा की तरफ भी बढ़ता गया है। डॉ. सावित्री सिन्हा जी का मत है कि "दिनकर के काव्य में जैसे-जैसे प्रौढ़ता आती गई है। वैसे ही वैसे वे अभिधा से लक्षणा की ओर बढ़ते गये है। उनकी कविता के भावपूर्ण स्थलों में वाच्यार्थ का सौन्दर्य अत्यंत स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है। जागृत पौरुष के

उच्चार और शृंगार भावना की सहजता दोनों ही प्रकार की कविताओं में भाषा का अभिधात्मक रूप प्रधान है।"[105] दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त शब्द शक्तियों का स्वरूप इस प्रकार है-

अभिधा

'रेणुका' काव्य संग्रह में संकलित 'मंगल आह्वान' कविता में अभिव्यक्त कवि की वाणी, जिसमें वे शृंगी फूँक कर सोये हुए प्राणों को जगाना चाहते हैं-

"दो आदेश, फूँक दूँ शृंगी, उठे प्रभाती-राग महान,
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में, जागे सुप्त भुवन के प्राण।"[106]

***

"भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल-भर का है,
जहाँ कहीं एकता अखंडित जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।
निखिल विश्व को जन्म-भूमि-वंदन को नमन करूँ मैं,
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?"[107]

इन काव्य पंक्तियों में अभिधामूलक शब्दों की सहजता स्वयं ही अभिव्यक्त है। इसका पाठन करते ही इसका अर्थ समझ में आ रहा है। इसमें किसी लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ का भाव नहीं है। अतः यहाँ अभिधा शब्द शक्ति है।

"रण की घड़ी; जलन की वेला, तो मैं भी कुछ गाऊँगा,

सुलग रही यदि शिखा यज्ञ की, अपना हवन चढ़ाऊँगा"[108]

कवि ने यहाँ शब्दों के मुख्यार्थ का ही समावेश किया है। अर्थात् शब्दों के प्रथम अर्थ का प्रयोग किया है कि 'रण की घड़ी व जलन की बेला' में मैं भी कुछ गाऊँगा और यदि शिखा की यज्ञ चल रही हो तो उसमे मैं स्वयं अपना हवन दूँगा अर्थात् रण, वेला, शिखा, हवन आदि शब्दों में मुख्यार्थ ही है।

"जग भूले, पर मुझे एक, बस, सेवा-धर्म निभाना है,

जिसकी है यह देह उसी में, इसे मिला मिट जाना है।"[109]

यहाँ अभिधार्थ से अर्थ ध्वनित हो रहा है कि, एक सिपाही अपने धर्म या कर्तव्य के प्रति कितना वफादार है कि, जग की बेपरवाही से मुक्त होकर धर्म में निरत रहता है। यह मिट्टी की देह तो एक दिन मिट्टी में ही मिल जाना है। यहाँ पूरी पंक्ति में अभिधार्थ से ही अर्थ निकल रहा है।

ब्रिटिश जब अपनी सांप्रदायिक कूटनीति में सफल हो गए और भारत का जब बंटवारा हो गया तो इस घटना ने दिनकर जी को अंदर तक झकझोर दिया। वे दु:खी और बोझिल मन से चीख उठते हैं-

"बेबसी में कांपकर रोया हृदय,
शाप-सी आहें गरम आईं मुझे;
माफ करना, जन्म लेकर गोद में,
हिन्द की मिट्टी, शरम आई मुझे।
खून! खूँ की प्यास, तो जाकर पियो
जालिमों, अपने हृदय का खून ही;
मार चुकी तकदीर हिंदुस्तान की,
शेष इसमें एक बूँद लहू नहीं।"[110]

सन् 1942 ई. के 'भारत छोड़ो' राष्ट्रीय आंदोलन को जब दबाया जाने लगा तब दिनकर जी ने 'आग की भीख' जैसी ज्वलंत व क्रांतिकारी कविता लिखी जिसमें भारत की तड़प और विवशता का चित्रण है-

"बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है?
मँझधार है, भँवर है या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?
तम-बेधिनी किरण का संधान माँगता हूँ।

ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान माँगता हूँ।"[111]

इसी प्रकार दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में अभिधा शब्द शक्ति का सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है।

लक्षणा शक्ति

लक्षणा शब्द-शक्ति भावों के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए जो असमर्थ शब्द होते हैं, उसकी कमी को पूरा करती है। दिनकर जी ने अपनी कल्पनात्मक शक्ति द्वारा ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है।

"सिंहों पर अपना अतुल भार मत डालो,

हाथियों! स्वयं अपना बोझ तुम सँभालो।"[112]

इन काव्य-पंक्तियों में दिनकर जी समाज और राजनीति में जो विषमता व्याप्त है उस पर आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए, 'सैनिकों' के लिए 'सिंह' और 'नेताओं' के लिए 'हाथियों' का लाक्षणिक प्रयोग किया है।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण है-

"कौन पाप? है याद, भेड़िये जब टूटे थे,

तेरे घर के पास दीन-दुर्बल भेड़ों पर"[113]

यहाँ दिनकर जी ने, 'भेड़िया' शब्द 'पूँजीपतियों' के लिए तथा 'दीन-दुर्बल' शब्द 'गरीब जन' के लिए इस्तेमाल कर लक्ष्यार्थ का सफल प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य के छायावाद युग में काव्याभिव्यक्ति में जो अस्पष्टता एवं दोष था उसको दूर करने का प्रयास दिनकर जी करते हैं। यतीन्द्र तिवारी जी लिखते हैं कि, "दिनकर जी ने छायावाद के लाक्षणिक शैली के दूरान्वय, अस्पष्टता और अत्यधिक साङ्केतिकता जैसे दोषों का निराकरण करके स्पष्ट और चित्रात्मक लक्षणाओं के द्वारा ही अपनी उस प्राणवंत और समर्थ भाषा का निर्माण किया है। जिसके कारण छायावाद परवर्ती कवियों में उनका स्थान शीर्ष पर रखा जाता है।"[114]

"सँभाले कहाँ बुद्ध का दाय?
आज छूँछे सब पिटक-निकाय।
कारगर कोई नहीं उपाय।
गिराओ बम, गोली दागो।
गाँधी की रक्षा करने को गाँधी से भागो।"[115]

यह काव्यांश दिनकर जी की 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य संग्रह में संग्रहीत 'अहिंसावादी का युद्ध-गीत' कविता से ली गई है। कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में लक्षणा शब्द शक्ति का बहुत ही सार्थक प्रयोग किया है। जैसे कवि जब कहता है कि, 'गाँधी की रक्षा करने को गाँधी से भागो' तो यहाँ जो प्रथम 'गाँधी' शब्द आया है वह महात्मा गाँधी का बोध न कराकर 'सम्पूर्ण भारत देश' का बोध करा रहा है और जो द्वितीय 'गाँधी' शब्द आया है, वह भी व्यक्ति विशेष के रूप में न होकर बल्कि 'गाँधी के सिद्धांत' रूप में आया है। अतः प्रथम गाँधी शब्द यहाँ अपने साधारण अर्थ

का बोध न कराकर विशिष्ट अर्थ या लक्ष्यार्थ भारत का बोध कर रहा है और दूसरा प्रयुक्त गाँधी शब्द भी अपने साधारण अर्थ का बोध न कराकर विशिष्ट या लक्ष्यार्थ का बोध गांधी जी के सिद्धांतों का बोध करा रही है। इस प्रकार दिनकर जी की इस काव्य पंक्ति में लक्षणा शब्द शक्ति पूर्ण रूप से प्रकट हो रही है। यह लक्षणा शब्द शक्ति का एक उत्तम उदाहरण है।

"तो होश करो, दिल्ली के देवों होश करो,
सब दिन तो ये मोहिनी न चलनेवाली है;
होती जाती है गरम दिशाओं की साँसें,
मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली है।"[116]

दिनकर जी ने देश की बदहाली को देख कर दिल्ली में चल रहे प्रवेशोत्सव पर व्यंग्यात्मक भाव से 'दिल्ली' को 'देवालय' तथा 'राजनेताओं' को 'देवों' रूप में कल्पित किया है और दिल्ली के देवगण अपने शासन सत्ता के मोह में इतने डूबे हुए हैं कि जनता के दु:ख-दर्द से उनका कोई लेन-देना ही नहीं रह गया है। दिनकर जी सचेत करते है कि 'मिट्टी' यानि मिट्टी से जुड़ा 'सामान्य आदमी' फिर कोई 'आग उगलना' अर्थात् 'बड़ा बदलाव' (क्रांति) करने वाला ही है। दिल्ली के देवों सावधान हो जाओ। यहाँ दिल्ली, गरम दिशाएं, मिट्टी, आदि शब्दों में व्यंजना की योजना की गई है।

"दर्शन की लहरें मत अधिक उछाल,

विचारों के विवर्त में पड़ा

आदमी बहुत विवश होता है।

मगरमच्छ नोचते देह का मांस और वह

छंदों में सोचता, ऋचाओं-श्लोकों में रोता है।"[117]

कवि ने यहाँ व्यंग्यात्मक रूप से 'चीन' को 'मगरमच्छ' कहा और 'देह' यहाँ 'भारत' के रूप में है। जिसे चीन नोच रहा है और हम उसके साथ विचार विमर्श करने में लगे हुए हैं। यहाँ व्यंग्यात्मक भाव है।

व्यंजना शब्द शक्ति

स्वतंत्रता से पूर्व गांधी जी के जिन आदर्शों और सिद्धांतों को सिर-आँखों पर रखा गया था। देश आजाद होने के बाद शासन सत्ता में उसकी अवहेलना की जाने लगी। जो गाँधीवाद के नाम पर ढोंग कर रहे हैं उन्हीं के दोहरे चरित्र का यहाँ कवि ने पर्दाफाश किया है। ऐसे लोगों पर दिनकर जी क्रुद्ध हो करारा व्यंग्य करते हैं-

"कुर्ता टोपी फेंक कमर में भले बांध लो,

पाँच हाँथ की धोती घुटनों के ऊपर तक,

अथवा गांधी बनने के आकुल प्रयास में

आगे के दो दाँत डॉक्टर से तुड़वा लो।"[118]

अतः दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में व्यंजना का अल्प मात्रा में प्रयोग हुआ। चूंकि राष्ट्रीय कविता देशहित व जनहित में लिखी जाती है, इसलिए दिनकर जी अपने समय के यथार्थ को ही अपने शब्दों में पिरोते हैं और सीधे शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। यही दिनकर के शब्दों की सामर्थ्य है और ये शब्द अपने परिवेश, परिस्थितियों से ऊर्जा लेकर इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि दिनकर का एक-एक शब्द हुंकार उठता है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु इनकी राष्ट्रीय कविताओं में अधिकांश मात्रा में अभिधा शब्द शक्ति का ही प्रयोग दिखाई देता है।

(ग) चित्रात्मकता

चित्रात्मकता काव्य की एक कला है। चित्रात्मकता एक सफल कवि व काव्य की प्रमुख विशेषता है। काव्य में कवि जब शब्दों के माध्यम से किसी दृश्य का विधान करता है और वह दृश्य आँखों के सामने आ जाए तो उसे चित्रात्मक काव्य या काव्य में चित्रात्मकता कहते हैं। जिसमें कवि अपने काव्यगत भावों की अभिव्यक्ति चित्रात्मक रूप से प्रस्तुत करता जिसमें कवि अपने भावों को छोटे-छोटे शब्द चित्रों के माध्यम से कविता का शृंगार करता है। कविता में एक मूर्ति गढ़ता है। चित्रात्मकता या चित्रभाषा कविता की एक खास विशेषता है। चित्रात्मकता कविता का एक

ऐसा विधान है, जिसमें कवि शब्द रेखाओं द्वारा किसी बिम्ब या चित्र को प्रस्तुत करता है। रामकुमार सिंह जी का विचार है कि, "प्रत्येक कविता एक चित्र के समान होती है और उसी प्रकार एक चित्र एक कविता के समकक्ष कहा जाना चाहिए- एक चित्र प्राय: मूक काव्य कहा जाता है और एक कविता एक मुखर चित्र।"[119] चित्रात्मकता का संबंध जितना कविता से है, उतना ही भाषा से भी। कविता में चित्रात्मकता का प्रयोग कवि भाषा व कल्पना शक्ति दोनों की सफलता का पर्याय है। चित्रात्मकता भाषा का एक गुण है जो उसके प्रयोग पर निर्भर होता है।

माखनलाल चतुर्वेदी

"हाँ दूर नहीं- पर वज्र गिरा!
लाखों ममताएँ चूर चले!
सदियों बंधन में बँधी हुई
माँ की आँखों के नूर चले"[120]

***

"भूखंड बिछा, आकाश ओढ़,

नयनोदक ले, मोदक प्रहार,

ब्रह्मांड हथेली पर उछाल,

अपने जीवन धन को निहार"[121]

इन काव्य पंक्तियों में कवि 'गिर', 'चले', 'बिछा', 'ओढ़', 'उछाल', 'निहार' आदि शब्दों से ही अपने काव्य में चित्र उपस्थित कर देते हैं। कवि अपनी कविताओं में किसी वस्तु या स्थिति का शब्दों के द्वारा चित्र खींचते है।

रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर जी ने भी अपनी राष्ट्रीय कविताओं में चित्रात्मकता का प्रयोग किया है। सुनीति जी दिनकर के काव्य में चित्रात्मकता के संबंध में कहती हैं कि, "दिनकर के दु:ख-दर्दों की तस्वीर खींचने वाला एक शाब्दिक चतुर चित्रकार है, जो यथार्थ की तूलिका से भावनाओं का रेखाचित्र खींचकर उनमें आदर्शों का सुनहरा रंग भरना चाहता है। दिनकर का काव्य मनोरंजन के कुछ क्षणों में किया गया सृजन नहीं है, किन्तु वह कवि से कठोर जीवन की साधना का सुंदर फल है। कवि का भाषा और शब्द चयन राष्ट्रीयता का एक सुंदर शब्द-कोश है। उनके काव्य में वीरता, शौर्य, पराक्रम, साहस, उत्साह, तथा उमंगों से भरा हुआ एक ऐसा अमृत है, जिसका पान कर कोई भी राष्ट्र अपनी दुर्बलता को और मनुष्य अपनी विषमता को स्पष्ट रूप से देख सकता है। किन्तु उसका काव्य प्रतिबिम्बात्मक दर्पण मात्र नहीं है। उसमें एक ऐसी तस्वीर भी अंकित है, जिसे देखकर राष्ट्र और समाज दोनों ही अपने को संवार सकते हैं।"[122] चित्रात्मकता को लेकर दिनकर जी का अभिमत है कि, "चित्र कविता का अत्यंत महत्वपूर्ण गुण है, प्रत्युत, कहना चाहिए कि यह कविता का

एकमात्र शाश्वत गुण है जो उस से कभी भी नहीं छूटता। कविता और कुछ चाहे करे या न करे, किन्तु, चित्रों की रचना वह अवश्य करती है और जिस कविता के भीतर बनने वाले चित्र जीतने ही स्वच्छ यानि विभिन्न इंद्रियों से स्पष्ट अनुभूत होने के योग्य होते हैं, वह कविता उतनी ही सफल और सुंदर होती है।"[123]

दिनकर जी के काव्य में जहां ओज गुण की बात है, वहाँ एक चित्रात्मकता विधान भी है। निम्न उदाहरण से हम देख सकते हैं कि चित्रात्मकता का नियोजन उनके काव्य में कितने सफल रूप में हुआ है। दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त चित्रात्मकता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

"झकझोरो झकझोरो महान गुप्तों को,
टेरो टेरो चाणक्य चंद्रगुप्तों को,
विक्रमी तेज असि की उद्दाम प्रभा को
राणा प्रताप, गोविंद शिवा सरजा को"[124]

यहाँ चित्रात्मकता के लिए दिनकर जी ने भाषा और भावों में सुंदर सामंजस्य स्थापित किया है। दिनकर जी काव्यभाषा में कल्पना, अनुभूति के साथ चित्रात्मकता को काव्य का गुण मानते हैं। चित्रात्मकता दिनकर जी के काव्य को कलात्मक उत्कर्ष की ऊँचाई देता है। चित्रात्मकता

दिनकर के काव्य की एक अन्यतम कला है, जो इनकी काव्यभाषा को और सशक्त व अभिव्यक्ति क्षमता से पूर्ण करता है।

(घ) ध्वन्यात्मकता

ध्वन्यात्मकता वह विशिष्ट काव्य तत्त्व है, जिससे टंकारों के साथ कविता झंकृत हो उठती है। इसमें शब्दों की अनुगूँज प्रायः देर तक बनी रहती है। यह शब्द देर तक झंकृत होकर किसी खास ध्वनि को उपस्थित करते रहते हैं। "काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का ध्वनन व्यापार होता है। 'ध्वनति ध्वनयति इति व ध्वनि' अर्थात् जो ध्वनित करे या कराए, वह ध्वनि है। अतः शब्द अर्थ-वाच्य (व्यंजक) अर्थ और व्यंग्य अर्थ तथा शब्द और अर्थ का व्यापार (ही) ध्वनि है। वाचक, लक्ष्यक और व्यंजक जब किसी व्यंग्य अर्थ के व्यंजक होते हैं तो वे ध्वनि कहे जाते हैं। ध्वनि का सीधा अर्थ है व्यंग्य।"[125] ध्वन्यात्मकता में प्रायः कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाता है।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में मानक भाषा एवं सामान्य लोकभाषा की ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। कवि ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में ध्वन्यात्मकता बनाने के लिए द्वितवर्ण का प्रयोग भी किया है। साथ ही 'ण' ध्वनि का प्रचुर प्रयोग किया है। जैसे- वेणु,

रेणु, प्रणय, वाणी। निम्न पक्तियों में भी हम ध्वनिमूलक शब्दों की योजना देख सकते है।

"छिः! मेरी प्रत्यंचा भूले अपना यह उन्माद!
झंकारों का कभी सुना है, भीषण वाद-विवाद?
क्या तुमको है कुरूक्षेत्र हलदी-घाटी की याद।"[126]

यहाँ 'उन्माद', 'विवाद', 'याद' आदि शब्दों की स्थापना, काव्य में ध्वन्यात्मकता को प्रदर्शित कर रही है।

रामधारी सिंह दिनकर

ध्वन्यात्मकता दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं की एक प्रमुख विशेषता है। ओज इनके यहाँ जितना सशक्त है, ध्वन्यात्मकता उतनी ही सुदृढ़ है। दिनकर जी को ध्वन्यात्मक शब्द इतने अधिक प्रिय हैं कि वे कहीं-कहीं पूरी की पूरी पंक्ति ही ध्वनिमूलक शब्दों से लिखते गए हैं। दिनकर जी की ध्वन्यात्मक पंक्ति का उदाहरण-

"यह भुवन-प्राण-तंत्री का स्वन?
लघु तिमिर-विचियों का कम्पन?
यह अमा हृदय का क्या गुनगुन?
किस विरह-गीत का स्वर उन्मन?
रुनझुन रुनझुन किसका शिंजन?"[127]

उपर्युक्त पद के अग्रलिखित शब्द जैसे- स्वन', 'कम्पन', 'गुनगुन', 'उन्मन', 'शिंजन' आदि में कवि ने ध्वन्यात्मकता का सफल प्रयोग किया है।

"युद्ध का परिणाम?
युद्ध का परिणाम ह्रास त्रास!
युद्ध का परिणाम सत्यानाश!
रूण्ड-मुण्ड-लुण्ठन, निहिन्सन मीच!
युद्ध का परिणाम लोहित कीच!"[128]

इन काव्य-पंक्तियों में 'ह्रास', 'त्रास', 'नाश', 'रुण्ड-मुण्ड-लुण्ठन', 'मीच', 'कीच' आदि शब्दों के माध्यम से ध्वनि साम्यता, लयात्मकता तथा गीतात्मकता का प्रवाह होता है।

(च) कल्पनात्मकता

कल्पना काव्य का एक बुनियादी तत्त्व है। कल्पना कवि के व्यक्तित्त्व का अंग होती है। कल्पना-शक्ति के द्वारा ही कवि काव्य सृजन करता है। कवि की कल्पना शक्ति जितनी विराट होगी, कवि का काव्य सृजन उतना विस्तृत एवं व्यापक होगा। कवि कल्पना के विषय में अक्सर लोक व्यवहार में यह सुनायी पड़ जाता है कि 'जहाँ न पहुंचे रवि वहाँ पहुंचे कवि।' यह कवि की कल्पना शक्ति का ही परिणाम है कि वह कल्पना शक्ति के माध्यम से आने वाले समय की आहट को जान जाता है। कवि के लिए कल्पना वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह अपने बंधनों

की सीमा में रहते हुए भी खुले आकाश में विचरण करने का सुख लेते हैं। कल्पना शक्ति के द्वारा ही कवि कभी-कभी एकदम से अतीत में, तो कभी सुंदर-सुखद भविष्य को देखता है, तो कभी वह खुले आकाश में विचरते हुए, आनंद लोक निर्मित करता है। कल्पना शक्ति कवि की बोध शक्ति व राग शक्ति होती है। जिससे वह काव्य सृजन करता है। छायावादी कवियों में महाप्राण निराला ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा तो पंत ने अपनी कविताओं को 'कल्पना के से विह्वल बाल' कहा।

कल्पना में काव्य शक्ति का उपयोग अति प्राचीन काल से होता आया है। इसके द्वारा काव्य अप्रस्तुत विधान की रमणीय सृष्टि करता है तथा काव्य में प्रस्तुत के लिए जो अप्रस्तुत का विधान किया जाता है, वह कल्पना शक्ति का ही क्रिया-व्यापार है।

कल्पना शक्ति के द्वारा ही कवि काव्य सृष्टि की अनंत यात्रा करता है। कल्पना शक्ति कभी-कभी अत्यधिक वायवीय भी बना देती है। जिससे वह अपने कल्पना लोक में विचरता रहता है और कई बार यथार्थ से उसका संबंध टूट जाता है। यह कल्पना की अतिशयता है। डॉ. श्याम सुंदरदास ने लिखा है कि- "कल्पना मन की वह क्रिया है, जिससे स्मरण शक्ति द्वारा संचित अनुभवों को विभक्त करके और फिर उनके पृथक-पृथक भागों को इच्छानुसार जोड़कर एक नवीन रचना करना, जिसका अस्तित्व बाह्य

जगत में नहीं है।"[129] कवि कल्पना द्वारा अदृश्यों का दृश्य विधान निर्मित कर उसे भाव जगत से वस्तु जगत में पदार्पण करता है।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविता में कई जगहों पर कल्पना की उड़ान दिखाई पड़ती है पर जहाँ वे ऊँची उड़ाने भरने लगते हैं, वहाँ कवि का अनुभूति पक्ष दुर्बल पड़ जाता है।

"स्मृति-पंखें फैला-फैला कर
सुख-दुख के झोंके खा-खाकर
ले अवसर उड़ान अकुलाकर
हुई मस्त दिलदार लगन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में!"[130]

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में कहीं-कहीं कल्पना की प्रधानता हो उठी है, तो कहीं यह गौण रूप से आयी है। इनकी राष्ट्रीय कविताओं में अन्यत्र भी मनोहारिणी कल्पनाएं की गई हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर जी की काव्य पंक्तियों में कल्पना का उदाहरण इस प्रकार है-

"पीकर जिनकी लाल शिखाएं
उगल रहीं लू-लपट दिशाएं,

जिनके सिंहनाद से सहमी धरती रही अभी तक डोल

कलम, आज उनकी जय बोल।"[131]

इन पक्तियों में कवि की कल्पना है कि हमारे जो महापुरुष हैं, सिपाही हैं, सैनिक हैं उनके बलिदानों से, उनके रक्त के ताप से, उनकी गरजना तथा सिंहनादों से धरती डरी-डरी सी होकर अभी तक डोल रही है। यह कवि की अतिशय कल्पनाशीलता है, जबकि लू का चलना या धरती का डोलना प्राकृतिक है।

(छ) भावनात्मकता

कवि की भावना को पाठक तक पहुँचाने का कार्य कविता करती है। कविता की भावनात्मक संवेदों द्वारा ही पाठक कवि के भावनात्मक संवेदों से होते हुए, जगत के संवेदों तक पहुँच पाता है तथा कवि जगत के भावात्मक संवेदों को पाठक तक पहुँचा पाता है। भावनात्मकता कई बार स्नेह के कोमल भावभूमि पर आ जाती है, तो कई बार यथार्थ की कठोर जमींन पर। भावनात्मकता कवि कल्पना को यदि उड़ने के लिए पंख देती हैं तो विचरने के लिए पूरा आसमान।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताएं प्रबल भावों की कविताएं हैं। देश के प्रति उनमें जो अनुराग है वह अद्भुत है। राष्ट्रभक्ति की भावना कवि की सबसे बड़ी भावना है। वह भी सिर्फ न्यौछावर, समर्पण और बलि हो जाने की। जैसे चतुर्वेदी जी जब कहते हैं कि-

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।"[132]

इन पक्तियों में हम राष्ट्र कवि की कोमल भावना को देख सकते हैं कि वह कैसे 'पुष्प' के माध्यम से स्वयं की भावनाओं को व्यक्त कर रहे हैं। यह केवल पुष्प की अभिलाषा नहीं है बल्कि यह अभिलाषा स्वयं कवि की भी है। वह स्वयं को देश के लिए समर्पित कर देना चाहते हैं। कवि ने यहाँ देशप्रेमी वीरों के मार्ग को सबसे पवित्र व बड़ा मार्ग माना है और वे उस मार्ग में स्वयं को भी न्यौछावर कर देना चाहते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर के अंदर भावनात्मक विराटता कितनी गहरी और कितनी प्रबल है। इसको हम उनकी इन पक्तियों से देख सकते हैं-

"भावों के आवेग प्रबल
मचा रहे उर में हलचल।
कहते, उर के बांध तोड़
स्वर-स्त्रोतों में बह-बह अनजान,
तृण, तरु, लता, अनिल, जल-थल को
छा लेगें हम बनकर गान।[133]

यहाँ हम दिनकर के भावों की प्रबलता को देख सकते हैं कि, उनके अंदर भावना कितनी जल्दी किसी आकार में ढल जाना चाहती है। उनके काव्य में देश प्रेम की भावना की अजस्र धारा प्रवाहित है। जब वे 'हिमालय' कविता लिखते हैं तो उनकी भावना कैसी मानवीय हो उठती है। उसे हम देख सकते हैं -

"कैसी अखंड यह चिर-समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान?
तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान?
उलझन का कैसा विषम जाल?
मेरे नगपति! मेरे विशाल!"[134]

कवि की कैसी सुंदर भावना हिमालय के प्रति है। वे अपनी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए हिमालय का मानवीकरण कर देते हैं। इस तरह से दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में भावना तत्त्व की प्रधानता है और यह भावना देश प्रेम के प्रति अगाध है।

(ज) काव्य-गुण

काव्य की चारुता व उसकी अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाने वाले तत्त्वों को काव्य गुण कहते हैं। भारतीय काव्य-चिंतन परंपरा में अलंकार सिद्धांत का मुख्य प्रतिपाद्य अलंकार रहा है तथा शेष काव्यांग इसके अंग रूप में प्रतिपादित हुए। काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक आचार्यों ने इसे अलंकार से पृथक स्वतंत्र विषय के रूप में इसका प्रतिपाद्य नहीं किया। डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह ने कहा है कि, "गुण काव्य रचना का अनिवार्य तत्त्व है। यह मुख्यतः उसकी भाषिक एवं अर्थगत भौतिक प्रकृति का विधायक होने के कारण उससे अनिवार्यतः जुड़ा है और अपनी विशिष्ट परिस्थिति के कारण पाठक में रसास्वादन का वातावरण सृजित करता है।"[135] काव्य गुणों में संख्या को लेकर बहुत मतभेद रहा है। इसी कारण काव्य में काव्य गुणों की संख्या अलग-अलग बताई है। जिसमें इसकी संख्या- 3 से लेकर 24 तक पहुँच गयी है। किन्तु सर्वमान्य रूप में तीन काव्य गुणों की चर्चा की जाती है- ओज, प्रसाद और माधुर्य की।

गुण	संबंधित वर्ण/ विशेषताएं
माधुर्य	ट ठ ड ढ को छोड़कर 'क' से 'म' तक के वर्ण ङ, ञ, ण, न, म से युक्त वर्ण ह्रस्व र और ण, समास का अभाव।
ओज	द्वित्व वर्णों, संयुक्ताक्षर, रेफ युक्त वर्ण और ट ठ ड ढ (कठोर वर्ण) की अधिकता, समास की अधिकता।
प्रसाद	सुनने मात्र से अर्थ-प्रतीति कराने वाले सरल और सुबोध शब्द

माखनलाल चतुर्वेदी

राष्ट्रीय कविताओं का संबंध ही ओजपूर्ण कविताओं से होता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में ओज गुण प्रथम स्थान पर आता है। जिसमें वीर रस प्रधान है। इस संबंध में डॉ. देवराज पथिक जी कहते हैं, "इनकी वाणी का प्रत्येक शब्द ज्वालामुखी बनकर समूचे देश में व्याप्त दासता की घोर निराशा में प्रज्वलित-अग्नि का प्रकाश करने की अद्भुत शक्ति समाहित किये है।"[136] इनकी राष्ट्रीय कविताओं से ली गई काव्य पंक्तियाँ जिनमें ओज गुण का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार है-

1. ओज गुण

चतुर्वेदी जी जब लोगों से आह्वान करते हैं तब उनकी भाषा कैसे ओज पूर्ण हो उठती है उसे

हम इस उदाहरण के माध्यम से देख सकते हैं-

"चिंतक चिंता-धारा तेरी, आज प्रा**ण** पा बै**ठी,**
रे यो**द्धा प्रत्यंचा** तेरी, उ**ठ** कि बा**ण** पा बै**ठी।**
लाल किले का झ**ण्डा** हो, अंगुलि-**निर्देश** तुम्हारा,
और क**टे** ध**ड़** वाला अ**र्पि**त तुमको देश तु**म्हा**रा।"[137]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में ओज गुण की निम्न विशेषताएं हैं-

'ट' वर्ग- 'प्राण', 'बैठी', 'बाण', 'उठ', 'झण्डा', 'कटे', 'धड़'।

द्वित्व वर्ण- 'योद्धा'।

संयुक्त वर्ण- 'प्रत्यंचा', 'तुम्हारा'।

रेफ युक्त वर्ण- 'निर्देश', 'अर्पित'।

अतः इन पंक्तियों में ओज गुण का प्रवाह है।

इसी प्रकार अन्य काव्य पंक्तियाँ जिनमें ओज गुण है। यहाँ प्रस्तुत है-

"कं**ठ** भले हों **कोटि-कोटि** तेरा स्वर उनमें गूँजा,
हथक**ड़ि**यों को पहन **राष्ट्र** ने पढ़ी क्रांति की पूजा।"[138]

***

"उ**ठ** र**ण**राते, ओ बलखाते, विजयी भारतव**र्ष**

नक्ष**त्रों** पर बैठे **पूर्व**ज माप रहे उ**त्कर्ष**।

ओ पूरब के **प्र**लयी पंथी, ओ जग के सेनानी

होने दे भूक**म्प** कि तूने, आज **भृकुटियाँ** तानी।"[139]

***

"उ**ठ** तरल विमल लय भरी साँस में-

धनु**र्धी**र तू कर निवास

जी उ**ठें** भूमि के **खण्ड-खण्ड**

ग**र्वि**त दीखे एशिया **खण्ड,**

असि के सपनों के आर-पार

बह रहे **स्वातंत्र्य**-धार।

शिर हो चि**न्त**न का सामगान,

उर ओ बलिदानों का प्रमा**ण**!

उठ को**टि**-को**टि** के महाप्रा**ण**!!"[140]

***

"हूँ मो**ट** खींचता लगा पेट पर जूआ,

खाली करता हूँ ब्रि**टि**श अक**ड़** का कूँआ।

दिन में करु**णा** क्यों जगे, रुलाने वाली,

इसलिए रात में गज़ब **ढा** रही आली?"[141]

***

"कि**न्तु** एक मैं भी हूँ किसी वृक्ष का छो**टा** दाना;

मुझको है महलों जैसे ही, **मिट्टी** में मिल जाना;

या कि क**टा** ध**ड़** हूँ **डा**ली का, मि**ट्टी** में मि**ट**ता हूँ;

व**र्षा** की बूंदों से रह-रह! मैं सन्तत पि**ट**ता हूँ"[142]

***

"तू सहसा नि**र्भ**य गरज उ**ठा**,

काला पानी सह जाऊँ मैं,

मेरे क**ष्टों** से भारत माँ

के बंधन **टूटे** पाऊँ मैं?"[143]

***

"हथियार न लो' की हथक**ड़ि**याँ,

रौल**ट** का हिय में घाव लिये,

डायर से अपने लाल क**टा**,

कहती थी, आँचल लाल किये,

ये **टूट** पड़ेंगे, जरा, केसरी,

कंपित, कर हुंकार उ**ठे**,

हाँ आंदोलन के ध**न्वा** को

तू कर में ले **टं**कार उ**ठे**।"[144]

***

"**झण्डा** है अभिमान, सबल हो!

चर**ण** चलें, ईमान अचल हो!!

अ**न्न** और असि दो से **न्या**रा,

ग**र्वि**त है भूदान हमारा,

सुन उस पंथी की **स्व**र-धारा

जिसने भारतव**र्ष**-सँवारा।

गोली राज**घाट** का बल हो!

चर**ण** चलें, ईमान अचल हो!!"[145]

***

"चर**ण**-चर**ण** चल पड़ी मातृ-भू वर**ण**-वर**ण** संतान लिये

हैं छ**त्ती**स करो**ड़** कि उनका अमित उचित अभिमान लिये।"[146]

***

"अब तो यज्ञ जाग उ**ठा** है,

ऐसी समिधा माँग उ**ठा** है,

जो चमके थे **सत्तावन** में

ले उस से बढ़ भाले।

सीमा ढूँढ रही सिर वाले!"[147]

***

हमने देखा कि, उपर्युक्त सभी काव्य पंक्तियों में वे सभी गुण विद्यमान है, जो ओज गुण के प्रतिमानों को पूर्णतः स्थापित करती है। माखनलाल

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताएं मूलतः वीर रस प्रधान होने के कारण उनमें ओज गुण ही प्रधान है। देवराज शर्मा 'पथिक जी कहते हैं कि, "इनकी वाणी का प्रत्येक शब्द ज्वालामुखी बनकर समूचे देश में व्याप्त दासता की घोर निराशा में प्रज्वलित अग्नि का प्रकाश करने की अद्भुत शक्ति रखता है"[148] माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं का प्रधान स्वर राष्ट्रीय है। जिसके फलस्वरूप इनका काव्य ओज गुण प्रधान काव्य है। इनकी राष्ट्रीय कविताओ में आवेश है, पुकार है, ललकार है, ओज की ही अजस्र धारा उसमें प्रवाहित हो रही है क्योंकि ओज ही उनकी राष्ट्रीय रचनाओं का संबल है।

रामधारी सिंह दिनकर

जिस समय दिनकर जी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर रहे थे। वह समय राजनीतिक दृष्टि से काफी उथल-पुथल का समय था। देश में औपनिवेशिक शासन सत्ता अपने चरम पर थी और जनता इस औपनिवेशिक शासन सत्ता से मुक्ति के लिए संघर्षरत थी। उस संघर्ष के वातावरण में निराशा के जो क्षण आते हैं। उन क्षणों से मुक्ति के लिए ओज एवं उत्साह की जरूरत थी। जिसकी पूर्ति दिनकर जी ने अपनी ओजपूर्ण राष्ट्रीय कविताओं के माध्यम से की। रामधारी सिंह दिनकर जी की प्रायः सभी राष्ट्रीय कविताओं में ओज-गुण देखने को मिलता है।

दिनकर के काव्य में ओज गुण की प्रधानता है। माधुर्य व प्रसाद इनके काव्य में सहायक गुण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। ओज दिनकर के काव्य का श्रृंगार है और इसी ओज में इनकी काव्य सरिता अपने पूरे वेग के साथ प्रवाहित होती है। डॉ. सावित्री सिन्हा जी का अभिमत है कि, "दिनकर के काव्य का अंतरंग दो प्रकार का है- माधुर्य गुण संयुक्त और ओज गुण संयुक्त। परंतु उसके बहिरंग का सर्वप्रमुख गुण है उसका प्रसादत्व। ओज गुण पुरुषावृत्ति और गौड़ी रीति का परंपरागत सामंजस्य दिनकर के काव्य में नहीं मिलेगा। ओज उनके समष्टि काव्य की आत्मा है, उस आत्मा में ही इतना बल है कि उसे परुष और कठोर बाह्य व्यक्तित्त्व की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए उसका बहिरंग सहज और प्रसादपूर्ण है। परंतु उसकी आत्मा में पर्वत को हिला देने की शक्ति है।"[149] दिनकर जी की 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी', 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि रचनाएँ वीर रस से परिपूर्ण काव्य संग्रह हैं। "दिनकर की आत्मा का ओज, माधुर्य, प्रसाद के सहारे ही व्यक्त हुआ है।"[150] इन काव्य संग्रहों में वीर रस की प्रधानता पाई जाती है।

ओज गुण

जहां निर्भीकता, निडरता व साहस का संचार हो वहाँ ओज गुण होता है-

"गरजो हिमाद्रि के शिखर, तुंग पा**टों** पर,
गुलम**र्ग**, विंध्य, पश्चिमी, पू**र्व** घा**टों** पर,

भारत-समुद्र की लहर, ज्वार-भा**टों** पर,

गरजो, गरजो मीनार और ला**टों** पर।"[151]

यहाँ इन काव्य पंक्तियों में रेफ युक्त वर्ण के साथ-साथ 'ट' वर्ण का भी प्रयोग हुआ है।

"आह! स**भ्य**ता के प्रांगण में आज गरल-व**र्षण** कैसा!

घृ**णा** सिखा नि**र्वाण** दिलानेवाला यह दर्शन कैसा!

स्मृतियों का अंधेर! शा**स्त्र** का दंभ! त**र्क** का छल कैसा!

दीन दु:खी असहाय जनों पर अ**त्या**चार प्रबल कैसा!"[152]

इन पंक्तियों में 'ण' वर्ण के प्रयोग द्वारा जैसे- 'प्रांगण', 'वर्षण', 'घृणा', 'निर्वाण' तथा संयुक्ताक्षरों जैसे- शास्त्र', 'दम्भ', 'दर्शन', 'अत्याचार' आदि ओज गुण की विशेषताओं को पूरी तरह से सार्थक सिद्ध करते हैं। इन वर्णों में परुष वर्ण की प्रधानता है।

"रण की घ**ड़ी**, जलन की वेला, रुधिर-पंक में गान करो,

अपनी आहुति धरो कु**ण्ड** में, कुछ तुम भी बलिदान करो।

व**र्त**मान के ह**ठी** बाल ये रोते हैं, बिलखाते हैं,

रह-रह हृदय चौंक उ**ठ**ता है, **स्वप्न टूटते** जाते हैं"[153]

***

"**ड**रपोक हुकूमत जु**ल्मों** से लोहा जब नहीं बजाती है,

हि**म्म**तवाले कुछ कहते हैं, तब जीभ तराशी जाती है,

उल**टी** चालें ये देख देश में हैरत-सी छा जाती है,

भट्ठी की ओदी आँच छिपी तब और अधिक धुँधुँआती है;

मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,

पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमंत्रण"[154]

***

"निर्जर पिनाक हर का टंकार उठा है,

हिमवंत हाथ में ले अंगार उठा है,

तांडवी तेज फिर से हुंकार उठा है,

लोहित में था जो गिरा, कुठार उठा है।"[155]

***

"सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी,

मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है;

दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"[156]

***

"कर में लिये त्रिशूल, कमंडलु,

दिव्य-शोभनी, सुरसरि-स्नाता,

राजनीति की अचल स्वामिनी,

साम्य-धर्म-ध्वज-दर की माता।

भारत-भूमि की मिट्टी से श्रृंगार सजानेवाली,

चढ़ हिमाद्रि पर विश्व-शांति का शंख बजानेवाली"[157]

***

"हम देंगे तुम को विजय, हमें तुम बल दो,

दो श**स्त्र** और अपना संक**ल्प** अ**ट**ल दो।

हों खड़े लोग **कटिबद्ध** वहाँ यदि घर में,

है कौन हमें जीते जो यहाँ समर में?"[158]

***

"गरजो, **अम्ब**र को भरो **रणोंच्चारों** से
क्रोधांध रोर, हांकों से, हुंकारों से।

यह आग मा**त्र** सीमा की नहीं लप**ट** हैं,

मू**ढ़ो! स्वतंत्रता** पर ही यह संक**ट** है।"[159]

***

"यह नहीं शांति की गुफा, यु**द्ध** है, र**ण** है,

ताप नहीं, आज केवल तलवार शर**ण** है।

ललकार रहा भारत को स्वयं मर**ण** है,

हम जीतेंगे यह समर, हमारा प्र**ण** है।"[160]

***

अतः उपर्युक्त दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं की सभी पंक्तियों में ओज गुण विद्यमान है। दिनकर जी राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं। वे भारतीयता के सच्चे व अमर गायक हैं। उनकी राष्ट्रीय कविताएं देश की राष्ट्रीयता को मजबूत करती हैं, तो दुश्मनों के लिए एक चुनौती पेश

करती हैं, और उन पर तीर, तलवार, भाले की तरह वार करती हुई लगती हैं। यह दिनकर के ओज का प्रताप है और यही ओज इनकी राष्ट्रीय कविताओं का प्राण है। इनकी राष्ट्रीय कविताओं में ओज गुण ही प्रमुख व प्रधान है।

(झ) शब्द-समूह

हिन्दी में चार प्रकार के शब्द समूह पाए जाते हैं- तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी। तत्सम, वे शब्द होते हैं जो संस्कृत से सीधे बिना किसी बदलाव के हिन्दी में स्वीकृत कर लिए जाते हैं। तद्भव, ऐसे शब्द होते हैं जो, संस्कृत से उद्भूत या विकसित हैं। ये प्राकृत से होते हुए हिन्दी में आये। देशज, वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति का कुछ पता नहीं चलता किन्तु बोलचाल और व्यवहार में ये स्थान पा गये हैं। विदेशी भाषाओं से आए हुए शब्दों को विदेशी कहा गया है। इसमें अलग-अलग भाषाओं के शब्द व्यवहृत होते हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी जी के द्वारा उनकी राष्ट्रीय कविताओं में प्रयोग किए गए शब्दों को देखें तो उनमें कई प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है। जिसे हम इस प्रकार से विभक्त कर सकते हैं -

1. **तत्सम शब्दों का प्रयोग**
2. **तद्भव शब्दों का प्रयोग**

3. देशज शब्दों का प्रयोग

4. विदेशी शब्दों का प्रयोग

5. ब्रजभाषा मिश्रित शब्दों का प्रयोग

माखनलाल चतुर्वेदी जी अपनी राष्ट्रीय कविताओं में मुख्यतः इन पाँच प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं। जिसमें तत्सम, तद्भव व परिष्कृत खड़ी बोली के शब्दों की प्रचुरता है तो विदेशी व ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग कम है। इनके काव्य में प्रयुक्त शब्द रूप इस प्रकार से हैं-

तत्सम शब्दों का प्रयोग

"श्रीपति-भारत हिमगिरी मुख की ध्वनि धारा
श्रीकृष्ण द्वैपायन, भागीरथ द्वारा।
प्रकटी भूमंडल पर सुर मण्डल करणी
मोह निशाचर मर्दिनी, खल-दल-बल-हरिणी।"[161]

पूरी पंक्ति ही यहाँ तत्सम प्रधान है।

***

"झंकृति से कृतियाँ बन उड़ीं,
गूँज उठी **दिशि-दिशि** में,
तेरी **स्वर-सुषमा** भर आई
रवि किरणों में, निशि में"[162]

***

"श्रेष्ठ है, वह **विपिन** है अपना अहा।

वध **गजेन्द्रों** का नहीं होता जहाँ!"[163]

इसके अतिरिक्त इसी कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **व्योम, नक्षत्र, जंबुकेश, कोटि, कृषक, ध्वज, शीश, तम, निज, आयु, सूर्य, पशु** आदि।

***

"गिनो न मेरी **श्वास**,

छूए क्यों मुझे विपुल सम्मान?

भूलो ऐ इतिहास,

खरीदे हुए विश्व-ईमान।

अरि-मुंडों का दान,

रक्त-तर्पण भर अभिमान"[164]

इसके अलावा इस कविता के अन्य तत्सम शब्द हैं- **अभिमान, वीणा, नाद, प्रत्यंचा, भीषण, कुरुक्षेत्र, प्रलय, त्रेता, कोटि-कोटि, कंठ, ज्ञात, अज्ञात, गर्जन, तर्जन, जल-थल-नभ, श्रम-सीकर, आराध्य** आदि।

***

"**मातृभूमि** है उसकी, जिस

को उठ जीना आता है,

दहन भूमि है उसकी, जो

क्षण-क्षण गिरता जाता है।

त्रिपुरी की नगरी ज़मीन में"[165]

इस कविता में ही संकलित अन्य तत्सम शब्द हैं- **भू, शीतल, समीर, गिरी-शृंगों, शिरमौर।**

***

"**प्राण** अंतर में लिये, पागल जवानी!
कौन कहता है कि तू
विधवा हुई, खो आज पानी?"[166]

इस कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **नर, मुंड, माला, आदि।**

***

"उठ **कोटि-कोटि** के **महाप्राण**!

सृजन-प्रलय पर

तांडव लय पर

कर **कूजित नव वेद-गान**।

उठ कोटि-कोटि के महाप्राण।।"[167]

इसी प्रकार इस कविता में उपयोग किये गये अन्य तत्सम शब्द हैं- **विमल, तरल, धनुर्धीर, खंड-खंड, गर्वित, सतत, असि, सामगान, प्रमाण**।

***

"**स्वयं वरण** कर **हिमगिरी** का रथ,

तुम्हें पुकार रहा **सागर-पथ**,

अणु से कहो **अमर** है निर्भय

बोल मूर्ख, मानवता की **जय**!"[168]

इस कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **चरण, अचल, रक्त, बिन्दु, निधि, शीश, अन्न, असि, भूदान, त्रिवेणी, रवि, उज्ज्वल**।

***

"यह **पताका** है,

उलझती है, सुलझती जा रही है,

जिंदगी है यह,

कि अपना **मार्ग** आप बना रही है।"[169]

इसके अतिरिक्त इस कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **हिमशिखर, भुजा, पताका, मार्ग, कृषक, रक्षिणी** आदि।

***

"आशाएँ आकाश चूम लें,

पंछी घूमें **मगन गगन** में,

उट्ठो **शीश** हथेली पर लो

जगें पीढ़ियाँ चगन-मगन में!"[170]

इन शब्दों के अतिरिक्त इस कविता के अन्य तत्सम शब्द इस प्रकार हैं- **तरुणाई, कुंज, मुकुट, विहार, प्रगट, माधव**।

***

"जब कि **उर्मि** उठी, **हृदय**-ह्रद मस्त होकर लहलहाया,

रात जाने से पहले सवेरा बहुत कसमसाया,

किन्तु हम भूले तुझे ही, जब हमें **रण-ज्वार** आया

एक हमने **शंख** फूँका, एक हमने गीत गाया!"[171]

अन्य शब्द- **प्राण, अभिमान, प्रहार, महान**।

***

"टपक-टपक प्राणों के रस तू बलि की मीठी राह,

चाह कभी होने मत पाये उनके **उर** की **दाह**,

क्षण बनती, क्षण मिटती चाहों का कितना-सा मोल

विकल साँप से बोल कि मेरी वंशी के स्वर डोल!"[172]

अन्य शब्द हैं- **भुजदण्ड, रक्तवाहिनी, ज्वार, आवेग, नभमंडल, प्रलयंकार, दिगम्बर, सुरसुरी, अमृत, हालाहल** आदि।

***

"मिले आरोह से अवरोह की लय,

कहे **ब्रह्मांड** हिंदुस्तान की जय।"[173]

इस कविता के अन्य तत्सम शब्द हैं- **नयन, निज, मंदाकिनी, सहस्र, धरा, ब्रह्मांड**।

***

"**नभ** तेरा है?- तो उड़ते हैं **वायुयान** ये किसके?

भुज-वज्रों पर, मुक्ति-**स्वर्ण** को देख लिया है घिसके!"[174]

इसी कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **शत-शत, पूजा, वज्र, दृगों, ज्वाला, मस्तक** आदि।

***

"ये हैं **हिमगिरी** की टेकड़ियाँ, ये हैं गह्वर ये हैं खाई,

यह है **नगाधिराज** का **मस्तक**, यह विराटता, यह ऊँचाई।"[175]

अन्य तत्सम शब्द हैं- **भुजदण्ड, प्रखर, सभ्यता, निज, धारा**।

***

"यहीं कहीं डमरू की धुन है,

यहीं कहीं रहते **प्रलयंकर**,

आज उसी की जीत रहेगी

जो **निज** कफन सँभाले

सीमा ढूँढ रही सिर वाले।"[176]

इसी कविता में अन्य तत्सम शब्द हैं- **प्रण, यज्ञ, समिधा, हिमवान, वैभव, मातृभूमि**।

***

"**वाणि, वीणा** और **वेणी** की **त्रिवेणी** धार बोले,

नृत्य बोले, गीत बोले, मूर्ति बोले, प्यार बोले।"[177]

इस कविता में प्रयोग किये गये अन्य तत्सम शब्द इस प्रकार हैं- **हिमगिरी, सिंधु, प्रलय, शृंगार, प्राण, झंकार, ज्वार, नव, जाह्नवी, कोटि,**

शिर, चरण, श्रम-सीकर, मधुर, नुपूर, आनन, मृदंग, रंध्र, मधु, अमित, हरि इत्यादि।

तद्भव शब्दों का प्रयोग

"तीस **करोड़** धड़ों पर गर्वित, उठे तने ये सिर हैं

तुम संकेत करो, कि हथेली पर शत-शत हाजिर हैं"[178]

***

"नभ कंपित हो उठा, **करोड़ों**

में यह हाहाकार हुआ,

वही **हाथ** से गिरा, भँवर में

जो मेरा पतवार हुआ।"[179]

***

"चले हिमखंड प्यारे;

चल रही है **साँस**"[180]

***

"रक्त है या नसों में क्षुद्र **पानी**!

जाँच कर, तू सीस दे दे कर **जवानी**"[181]

***

"मेरी **आंखें,** मातृ भूमि से

नक्षत्रों तक, खीचें रेखा,

मेरी पलक-पलक पर गिरता

जग के उथल-पुथल का लेखा!"[182]

***

"मृदुल चिड़ियों की चहक

पर महक है बेचैन?

यह **सवेरे** की हवा,

आ गयी बनकर मैन"[183]

"**गौरव** शिखरो नहीं, समय की मिट्टी में मिलवाओ।
फिर विंध्या के मस्तक से करूणा-घन हो, झर लाओ।"[184]

***

"जब बलि रक्त-बिन्दु-निधि माँगे

पीछे पलक, शीश कर आगे,

सौ-सौ युग अँगुली पर जागे

चुंबन सूली को अनुरागे।"[185]

***

"अंतर के **अंधड़** को बाँधे,
बाहर बलि का गान सजाए।"[186]

इसके अतिरिक्त इस कविता में अन्य तद्भव शब्द हैं- **संजीवनी, सिर, हथेली, साँस, गोद**।

***

"जब कि उर्मि उठी, हृदय-ह्रद मस्त होकर लहलहाया,
रात जाने से पहले **सवेरा** बहुत कसमसाया।"[187]

***

"क्षण बनती, क्षण मिटती चाहों का कितना-सा मोल

विकल **साँप** से बोल कि मेरी वंशी के स्वर डोल!"[188]

***

"हिमगिरी शिखर **ओढ़कर** बैठे धूएँदार दुशाले,
नदियों में अस्तित्व खो रहे जहाँ समर्पित नाले"[189]

***

"बूढ़े युग के बूढ़े **सपने**

नन्हें **हाथों** से दफना दे,

ओ **पूरब** के प्रलयी पंथी,

उठ चल एक भैरवी गा दे।"[190]

***

"फिर बजे वीणा प्रवीणा, फिर भले रँगरेलियाँ हों,
रक्त लेता हो चुनौती, फिर भले **अठखेलियाँ** हों।"[191]

***

"यह है सिरवालों का सौदा, यह है भुजदंडों का न्यौता,
आज प्रखरतम वार चाहिए, फेंक **कतरनी**, फेंक **सरौता**।"[192]

***

"वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी,

प्रथम प्रभात किरण से हिम में **जोत** जगी,

उतर पड़ी गंगा खेतों **खलिहानों** तक,

मानो **आँसू** आये बलि-महमानों तक,

सुख कर जग के क्लेश!

प्यारे भारत देश!!"[193]

***

"प्रहारक, बाण हो कि हो बात

चीज़ क्या, आर-पार जो न हो,

दान क्या, **भिखमंगों** के स्वर्ग

प्राण तक तू उदार जो न हो।"[194]

इसी कविता में अन्य तत्सम शब्द है- **कपास।**

देशज शब्दों का प्रयोग

माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं व गीतों में देशज शब्दों का प्रयोग भी मिलता हैं । देशज शब्दों के प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं-

"मेरी गरीब करुणा पर,

वे मस्तक डोल न पाते,

तेरी गति पर तरु तृण हैं,

अपनी **फुनगियाँ** हिलाते।[195]

***

"वनमाली बन तरुओं में,

तुझसे **खिलवाड़** मचाते,

गिरी-शिखर गोद लेने में,

तुझ पर हैं होड़ लगते।"[196]

***

"किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका?

तुझे झाँकना पाप हुआ ,

आग लगे, वरदान **निगोड़ा**

मुझ पर आकर शाप हुआ।"[197]

***

"तू ने कब साधना बिखेरी ?

कैसे तुझे पकड़ता ?

साथ खेलता था, तेरे

पाने को कैसे **अड़ता**?"[198]

***

"अंधकार **खोदूँ**? कैसे? इसका

प्यारे अस्तित्व अमर है,

पृष्ठ टूट जाने पर, सुंदर चित्रण

के मिटने का डर है।"[199]

चतुर्वेदी जी के काव्य में अन्य बहुत से देशज शब्दों का प्रयोग हुआ हैं जैसे- "बदरिया, कलमुँही, रूठन, रसिया, कलेजौ, चदरिया, मटकिया, अंखियाँ, छिया-छी, निगोड़ा, अलाव, ठिठौली, बैरिन, झोल, उट्ठी, गहराये, कूता, बरज, निरी, लकुटी, मेख, आगी, निंदिया, पहार, छोरे, अहिवातिन, कनौडी, हरजाई, पुहुप, बहिना, लुटिया, नेह, लीक, बाट, हेला, वारना,

रतनारे, टाँकी, फुनगियाँ, छल-छाँही, रमन, पंखेरू, हौले-हौले, बीजुरी, आँज, छुप-छुप, कुँआरी, अमियाँ, झूमर-झालर, रिमझिम आदि।"[200]

विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग

उर्दू शब्द-

"यह भी न बने, वह भी न बने-कैसी बैरन लाचारी है!

यह भी न छूटे, वह भी न माने-कैसी कोमल बीमारी है!

गुस्ताख ज़वानी जाने क्या माँ बापों का मन कैसा है?

सौतन चाहें पहचानें क्या **दिलवर** का दिल किस जैसा है?"[201]

***

"बागी, **दागी**, कहलाने पर,

ज़रा न मन में मुरझाया,

अगणित कंसों ने सम्मुख

सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया।"[202]

***

"जहाँ से जो खुद को **जुदा** देखते हैं

खुदी को मिटाकर **खुदा** देखते हैं

फटी चिन्धियाँ पहिने, भूखे भिखारी

फ़कत जानते हैं तेरी इन्तजारी"[203]

***

"तुही है बहकते हुओं का इशारा,

तुही है सिसकते हुओं का सहारा,

तुही है दुखी **दिलजलों** का 'हमारा,

तुही भटके भूलों का है धुर का तारा,

ज़रा सीखचों में 'समा' सा दिखा जा,

मैं सुध खो चुकूँ, उससे कुछ पहले आ जा।"[204]

***

"छोड़ देंगे हम **गुलामी,** दीनता"[205]

अरबी शब्द-

"मुझे भूलने में सुख पाती,

जग की काली स्याही,

दासो दूर कठिन **सौदा** है

मैं हूँ एक सिपाही।"[206]

***

"हीरा मोती धँसते,

धंसते **ज़री** और **कमखाब,**

धंसते देखे राजमुकुट

गढ़ महलों के **महराब।**"[207]

***

"बाग़ की **बाग़ी** हवा की मानिनी खिलवाड़,

पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़"[208]

इस कविता में अन्य अरबी शब्द है- **कुरबान, हवा**।

***

"किसने कहा **जिरह**-बख्तर दो

संजीवनी साध लाए हैं,

किये विशाल क्षुद्र को हम तो

सिर से **कफन** बाँध लाए हैं।"[209]

***

"तुझ पर पागल बने आज उन्मत्त **ज़माना**,

तेरे हाथों बुने सफलता ताना-बाना।"[210]

***

"तेरे पर्वत शिखर कि नभ को भू के मौन इशारे,

तेरे वन जग उठे पवन से हरित **इरादे** प्यारे,

रामकृष्ण के लीलामय में उठे बुद्ध की वाणी,

काबा से कैलाश **तलक** उमड़ी कविता कल्याणी;

बातें करे दिनेश!

प्यारे भारत देश!!"[211]

फारसी शब्द-

"फिर कुहू!..अरे क्या बंद न होगा गाना?

इस अंधकार में मधुराई **दफ़नाना** ?

नभ सिख चुका है **कमज़ोरों** को खाना,

क्यों बना रही अपने को उसका दाना?"[212]

इसी प्रकार इस कविता के अन्य विदेशी शब्दों में फारसी के कुछ शब्द जैसे- **आवाज़, दरवाज़ा, पहरा** इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

***

"संधि का संदेश भेजा है यहाँ;

पूछ कर किसके **कलेजा** है यहाँ?"[213]

इसके अतिरिक्त इस कविता के अन्य फारसी शब्द जैसे- **कलेजा, बाज़ार, आबाद, नाज़, हजारों** आदि।

***

"बागी, **दागी**, कहलाने पर,

ज़रा न मन में मुरझाया,

अगणित कंसों ने सम्मुख

सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया।"[214]

***

"अरि-मुंडों का दान,

रक्त-तर्पण भर का अभिमान,

लड़ने तक महमान,

एक पूंजी है **तीर-कमान**।

मुझे भूलने में सुख पाती,

जग की काली स्याही,

दासो दूर कठिन सौदा है

मैं हूँ एक **सिपाही**।"[215]

***

"मैं यह चला पत्थरों पर चढ़,

मेरा **दिलबर** वहीं मिलेगा,

फूँक जला दें सोना-चाँदी,

तभी क्रांति का सुमन खिलेगा"[216]

***

"**बाग़** की बाग़ी हवा की मानिनी खिलवाड़,

पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़"[217]

इस कविता में अन्य फारसी शब्द है- **बाज़ार**।

***

"कैसा अपना, कौन पराया, क्या ममता, क्या माया
पेशानी पर निश्चय लिख कर दूर निकल कर देख!"[218]

***

"मिले आरोह से अवरोह की लय,

कहे ब्रह्मांड **हिंदुस्तान** की जय।"[219]

***

"फेंक बंधन, कि वार पर वार

मधुर स्वर क्यों **सितार** जो न हो

रखे लज्जा क्यों संत, कपास

पेर कर तार तार जो न हो?"[220]

इसी कविता में अन्य फारसी शब्द है-चीज़।

अंग्रेजी भाषा-

"श्रेष्ठ हैं, वह विपिन है अपना अहा,

वध गजेंद्रों का नहीं होता जहाँ,

है **रिपोर्टों** में कलेजा छप रहा,

देश के आनंदभवनों ने कहा"[221]

***

"**बूट** चाहिए, सूट चाहिए, **कॉलर हैट** और **नेकटाय**।

चेन चाहिए, **कोट** चाहिए, घड़ी सहित फिर **डेली** चाय।

देखो इन पर लिखा न होवे कहीं '**मेड इन** हिंदुस्तान'"[222]

***

"हे वृद्ध महर्षि, हिला न सकी

कायर **जज** की कुत्सित वाणी"[223]

इसी प्रकार इनकी 'तिलक' कविता में अन्य अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। वह अंग्रेजी शब्द हैं- **रौलट, इंग्लैंड, पार्लिमेंट, रिफ़ार्म एक्ट** इत्यादि।

***

"खुली पंखड़ियाँ, कि तू बे-मोल,

हाट है यह; तू हृदय मत खोल"[224]

ब्रजभाषा मिश्रित शब्दों का प्रयोग

"रूठन में, पुतली पर जी की जूठन **डोलै री**,

अनमोली साधों में मुरली मोहन **बोलै री**,

करतालन में **बँध्यो** न रसिया, वह तालन में **दिख्यो**।"[225]

उपर्युक्त उदाहरणों में हमने देखा कि माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपने काव्य में इन अनेक भाषा रूपों का प्रयोग बड़ी ही सहजता के साथ किया है। यह माखनलाल चतुर्वेदी जी की भाषा प्रयोग संबंधी निपुणता को प्रकट करने के साथ-साथ उनकी भाषायी पकड़ को भी दर्शाता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं की भाषा का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इनकी कविताओं में प्रयुक्त शब्द समूहों पर यदि दृष्टिपात करें तो कवि ने न केवल संस्कृत बाहुल्य शब्द का प्रयोग

किया है, बल्कि उसके साथ-साथ ठेठ परिष्कृत खड़ी बोली, फारसी, उर्दू, अरबी और अंग्रेजी आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है।

रामधारी सिंह दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी रचनाओं में मिश्रित शब्द-समूह का प्रयोग किया है। जिसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी तथा स्वनिर्मित आदि वर्गों के शब्द शामिल हैं। काव्य में शब्दों का चयन उनकी अपनी ही एक विशेषता है। दिनकर जी शब्दों का चुनाव उनके स्वरूप के कारण नहीं बल्कि उनके सामर्थ्य के कारण करते हैं। दिनकर जी लिखते हैं-"शब्द तो मेरे अनेक होते थे और मुझे भी उनके बीच चुनाव करना पड़ता था। किन्तु, शब्दों का चयन मैं उनके रूप नहीं, सामर्थ्य के कारण करता था।"[226] रामधारी सिंह दिनकर जी कवि तो राष्ट्रीय हैं लेकिन भाषा के संदर्भ में उनका स्वभाव लचीला है। वे कट्टर या केवल शुद्ध तत्समवादी नहीं हैं। यही कारण है कि वे अपनी काव्यभाषा में किसी अन्य भाषा के शब्द प्रयोग में कोई भेद नहीं स्थापित करते हैं। भावों के अनुरूप वे अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। आज के संदर्भ में हिन्दी के तत्समीकरण की जो बात होती है, वह दिनकर जी पर लागू नहीं होती। उन्होंने हिन्दी के उस रूप को लिया है, जिसका स्वभाव लचीला है, जो अपने स्वभाव के अनुसार किसी भी भाषा के शब्द को अपनी प्रकृति के अनुरूप ढालकर उसे अपना लेती है। जैसे-रेलगाड़ी, इस तरह के शंकर या

विदेशी शब्दों के प्रयोग दिनकर जी अपने काव्य में कर लेते हैं। ये शब्द हिन्दी में ऐसे घुल मिल गए हैं कि इन्हें हिन्दी का ही समझा जाता है। यदि इनके स्थान पर हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाए, तो सामान्य लोग समझ भी न पाएंगे और काव्य में वह भाव और सौन्दर्य भी न आएगा, जो इन शब्दों के प्रयोग से आता है। दिनकर जी का व्यक्तित्त्व भी ऐसा ही विशाल है। वे मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते हैं। इसी तरह से उन्होंने उन शब्दों में भी भेद नहीं किया, जो हिन्दी के प्रकृति के अनुरूप हैं।

दिनकर जी की भाषा सरल, सुबोध और व्यावहारिक है। जिसमें उनके अंतर्मन के भावों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है। इनकी राष्ट्रीय कविता की भाषा प्राय: संस्कृत की तत्सम शब्द प्रधान साहित्यिक खड़ी बोली है। दिनकर की काव्यभाषा में विविध भाषाओं के शब्द मिलते हैं। जैसे- अरबी, उर्दू, फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। पर इन शब्दों के प्रयोग कवि किसी विधि-विधान अथवा नियम के अनुरूप नहीं बल्कि भाषा की सहज गति के साथ करते हैं। इस क्रम में कवि ने कहीं-कहीं देशज एवं क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग भी किया है। इस प्रकार से शब्द चयन में दिनकर जी की राष्ट्रीय कविता की भाषा में कोई भाषायी निषेध नहीं दिखाई पड़ता और न ही शब्द चयन में भाषायी अराजकता ही दिखाई पड़ती है। शब्द चयन

के वे बड़े ही कुशल कारीगर हैं और अपने काव्य में वे एक-एक शब्द को एकदम नापतोल कर रखते हैं। उनके काव्य में कहीं से न तो कोई वाक्य जोड़ा जा सकता है और न ही निकाला जा सकता है। दिनकर की काव्यभाषा खड़ी बोली है। किन्तु जैसा कि हिन्दी भाषा की रचना में कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होता आया है या यूं कहें कि खड़ी बोली हिन्दी ने कई भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित कर लिया है। भाषा का यही समादृत रूप दिनकर जी के काव्य में प्रयुक्त हुआ है। जिससे इनकी काव्यभाषा में हमें तत्सम, तद्भव, विदेशी व देशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। यदि हम इनकी राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त शब्दों को अलग-अलग वर्गों में विभक्त करके तैयार करें तो एक शब्द कोश तैयार हो सकता है। जिसके लिए हमें अलग से काम करने की जरूरत है। अतः यहाँ पर मैंने उनकी राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों के महत्वपूर्ण शब्द समूह को ही रेखांकित किया है जो इस प्रकार है-

1. **तत्सम शब्दों का प्रयोग**
2. **तद्भव शब्दों का प्रयोग**
3. **देशज शब्दों का प्रयोग**
4. **विदेशी शब्दों का प्रयोग**

तत्सम शब्दों का प्रयोग

रामधारी सिंह दिनकर जी मुख्यतः तत्सम शब्दावली के कवि हैं। इनकी भावनाओं का भार इतना है कि उसको सुगठित शब्द ही वहन कर सकते हैं। यही कारण है कि दिनकर जी तत्समयुक्त शब्दों का ही प्रयोग अधिक किए हैं। डॉ. सावित्री सिन्हा जी लिखती हैं- "दिनकर द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्दों के प्रयोग में औचित्य और संतुलन का निर्वाह हुआ है। ये शब्द उनके प्रतिपाद्य की गंभीरता और भव्यता के प्रतिपादन में सहायक हुए हैं तथा इन्हीं के द्वारा उनकी भाषा में लाक्षणिक भाव-गर्भत्व, अर्थ-गरिमा और चित्रमयता का संश्लिष्ट प्रयोग हो सका है।"[227]

दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली के कुछ दृष्टांत इस प्रकार से हैं-

"युग-युग **अजेय**, **निर्बंध**, मुक्त,
युग-युग **गर्वोन्नत**, **नित** महान,
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का **वितान**?"[228]

***

"छोड़ो मत अपनी आन, **सीस** कट जाये,
मत झुको **अनय** पर, भले **व्योम** फट जाये।"[229]

***

"**असि** की नोकों से **मुकुट** जीत अपने सिर उसे सजाती हूँ"[230]

***

"खोज रहे वह **उत्स** जहाँ से **पयस्विनी** छूटी थी,

अभयदायनी, **शुभ्र अहिंसा** की धारा फूटी थी।

वह **निसर्ग-शुचि मंत्र, धर्म-जाग्रत** जिससे जन-मन हो,

बिना छुए **विष** को विष की **ज्वाला** का स्वयं **शमन** हो"[231]

***

"घटा को फाड़ **व्योम**-बीच गूँजती दहाड़ है,

जमीन डोलती है और डोलता पहाड़ है;

भुजंग दिग्गजों से, कूर्मराज त्रस्त कोल से,

धरा उछल-उछल के बात पूछती **खगोल** से"[232]

***

"**आत्मदर्शन** की **व्यथा, परिताप, पश्चाताप,**

डँस रहे सब मिल, उठा है **भूप** का मन काँप"[233]

***

"सच है जब गिरती गाज कठिन,

भूधर का **उर** फट जाता है,

जब **चक्र** घूमता है, **मस्तक**

शिशुपालों का कट जाता है"[234]

***

"दहक रही मिट्टी **स्वदेश** की,

खौल रहा **गङ्गा** का पानी;

प्राचीरों में गरज रही है

जंजीरों से कसी जवानी"[235]

***

"यह कैसी चाँदनी **अमा** के मलिन **तमिस्र गगन** में

कूक रही क्यों नियति व्यंग्य से इस **गोधूलि लगन** में?

मरघट में तू साज रही दिल्ली! कैसे शृंगार ?

यह बहार का **स्वांग** अरी, इस उजड़े हुए चमन में!"[236]

***

"तलवार **पुण्य** की सखी, धर्मपालक है,

लालच पर अंकुश कठिन, लोभ सालक है।

असि छोड़, भीरु बन जहाँ धर्म सोता है,

पातक प्रचंडतम वही प्रकट होना है।"[237]

***

"कच्चा पानी ठीक नहीं,

ज्वर-ग्रसित देश है।

उबला हुआ **समुष्ण सलिल** है पथ्य,

वही **परिशोधित** जल दे।

जाड़े की है रात, गीत की गरमाहट दे,

तप्त **अनल** दे।"[238]

***

"हाँ, वही, रूप **प्रज्वलित विभाषित नर** का,

अंशावतार सम्मिलित **विष्णु-शंकर** का।

हाँ, वही, **दुरित** से जो न **संधि** करता है,

जो संत धर्म के लिए **खड्ग** धरता है।"[239]

***

"ओ शंका के **व्याल**! देख मत मेरे **श्याम** वदन को,

चक्षु:श्रवा! **श्रवण** कर बंसी के भीतर के स्वन को"[240]

***

"अब्दों, **शताब्दियों**, **सहस्राब्द** का अंधकार

बीता; **गवाक्ष** अम्बर के **दहक** जाते हैं;

यह और नहीं कोई, जनता के **स्वप्न अजय**

चीरते **तिमिर** का **वक्ष** उमड़ते आते हैं"[241]

दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में ओज की प्रधानता के कारण तत्सम शब्दावली प्रमुख है। इनके काव्य में कहीं-कहीं पूरी की पूरी पक्तियाँ ही तत्सम शब्दों से आबद्ध है। यह दिनकर जी के काव्य की एक प्रमुख विशेषता भी है।

तद्भव शब्दों का प्रयोग

"ले चुकी सुख भाग समुचित से अधिक है देह,

देवता है माँगते मन के लिए लघु **गेह**"[242]

यहाँ गेह एक तद्भव शब्द है, जिसका अर्थ होता है **घर, गृह, निवास** इत्यादि परंतु दिनकर जी ने देह के साथ तुक मिलाने के लिए गेह जैसे तद्भव शब्द का प्रयोग किया है।

***

"हँसकर लिया मरण ओठों पर, जीवन का व्रत पाला,

अमर हुआ सुकरात जगत में पीकर विष का प्याला।

मरकर भी मंसूर नियति की सह पाया न **ठिठोली**,

उत्तर में **सौ** बार चीख कर बोटी-बोटी बोली"[243]

***

"पर, कदम-कदम पर यहाँ खड़ा **पातक** है,

हर तरफ लगाये घात खड़ा घातक है।"[244]

***

"खो गये कहाँ भारत के वे **सपने** प्यारे प्यारे?

किस गगनांगण में डूबे वे **चाँद** और वे तारे?"[245]

***

देशज शब्दों का प्रयोग

"तुम कहते हो, आदमी नहीं यों मानेगा,

खूँटे से बांधों इसे और **रिरियाने** दो,

सीधे मन से यह पाठ नहीं जो सिख सका,

लाठी से थोड़ी देर हमें सिखलाने दो"[246]

***

"तुम कहते हो, आदमी नहीं यों मानेगा,

खूँटे से बांधों इसे और **रिरियाने** दो,

सीधे मन से यह पाठ नहीं जो सीख सका,

लाठी से थोड़ी देर हमें सिखलाने दो"[247]

यहाँ रिरियाने का अर्थ है- **गिड़गिड़ाना, दीनता को प्रकट करना, घिघियाना** आदि।

***

"क्या अघटनीय घटना कराल?

तू पृथा-कुक्षि का प्रथम **लाल**,

बन सूत अनादर सहता है,

कौरव के दल में रहता है।"[248]

***

भैया! लिख दे एक कलम खत **मों बालम** के जोग,

चारों कोने **खेम**-कुशल, **माँझे ठाँ मोर** वियोग"[249]

***

"रंगों के सातों घट उँड़ेल, यह अँधियाली रंग जायेगी,

ऊषा को सत्य बनाने को जावक नभ पर **छितराता** चल"[250]

***

"तब तुम्हीं बोलो, हम क्या करें?

चाय पियें और जी में आये जो, **बका** करें।

बकना ही असली स्वराज है।"[251]

***

"एक कहता है, हाहाकार है,

दाम **पै** लगाम कसो, देश की पुकार है।"[252]

***

"चल रहे ग्राम-कुंजों में **पछिया** के झकोर,

दिल्ली, लेकिन, ले रही लहर पुरवाई में।

है विकल देश सारा अभाव के तापों से;

दिल्ली सुख से सोई है नरम रजाई में।"[253]

विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग

उर्दू-फारसी-

"अरी हया कर, है **जईफ** यह खड़ा कुतुबमीनार,

इबरत की मां जामा भी है, यहीं अरी! हुशियार!"[254]

***

"कुछ नई पैदा रगों में जाँ करे,

कुछ **अजब** पैदा नया तूफाँ करे।"[255]

***

"प्रेम का **सौदा** बड़ा अनमोल रे!

नि:स्व हो, वह मोह-बंधन खोल रे!"[256]

***

"प्रेम की **दुनिया** बड़ी ऊँची बसी,

चढ़ सका आकाश पर विरला यशी।"[257]

***

"मर-मिटो, यह प्रेम का शृंगार है।

बेखुदी इस देश में त्योहार है।"[258]

***

"माँ रोती, बहनें कराहतीं, घर-घर व्याकुलता जागी,

उपल-सरीखे पिघल तुम किधर चले मेरे **बागी**?"[259]

***

"हाँ, कंप **जरा** हरियाली में,

थी आहट कुछ वैशाली में।"[260]

***

"**हिम्मत** की **रौशनी**"[261]

***

"डरे तू **ना-उमेदी** से, कभी यह हो नहीं सकता।

कि तुझ में ज्योति का अक्षय भरा भण्डार है साथी।"[262]

***

"नया मैदान है राही, गरजना है नए बल से,

उठा, इस बार वह जो **आखिरी** हुंकार है साथी"[263]

***

"**कदम** पीछे हटाया तो अभी **ईमान** जाता है"[264]

***

"अगर कहे तू, युद्ध पुष्प बम**बाजी** फुलझड़ियाँ हैं,

ये रोने की नहीं, मस्त, खुश होने की घड़ियाँ हैं"[265]

***

"अरे, अरे, दिन-दहाड़े ही **जुल्म** ढाता है।

रेलवे का स्लीपर उठाये कहाँ जाता है?"[266]

***

"बने जाते कल-कारखाने **आलीशान** भी,

साथ-साथ तेरे कुछ अपने मकान भी"[267]

***

"और, अरे यार! तू तो बड़ा शेर-बिल है,

बीच राह में ही लगा रखी **महफ़िल** है।"[268]

***

"सिर तोड़ देंगे, नहीं राह से टलेंगे हम,

हाँ, हाँ, जैसे चाहे, वैसे नाच के चलेंगे हम।

बीस साल पहले की **शेखी** तुझे याद है।

भूल ही गया है, अब भारत आजाद है।"[269]

***

"डूबती हुई **किश्तियाँ** ! और यह किलकारी !

ओ नीतिकार ! क्या मौत इसी को कहते हैं?

है यही **खौफ़** जिससे डरकर जीनेवाले

पानी से अपना पाँव समेटे रहते हैं?"[270]

***

"औ बड़े **शौक** से मौत पिलाती है जीवन

अपनी छाती से लिपट खेलनेवालों को।"[271]

***

"मनाती हो चीता के पास

जैसे चाँदनी **मातम**।

ढलकते गीत में मोती,

चमकती आँख में **शबनम**।"[272]

***

"अपनी हड्डी की **मशाल** से

हृदय चीरते तम का,

सारी रात चले तुम दुख

झेलते कुलिश निमम का।"[273]

***

"ओ **बदनसीब** ! इस ज्वाला में

आदर्श तुम्हारा जलता है,

समझायें कैसे तुम्हें कि

भारतवर्ष तुम्हारा जलता है?"[274]

फारसी भाषा-

"कुछ नई पैदा रगों में **जाँ** करे,

कुछ अजब पैदा नया **तूफाँ** करे।"[275]

***

"**बे-सरो-सामाँ** रहे, कुछ गम नहीं,

कुछ नहीं जिसको, उसे कुछ गम नहीं।"[276]

***

"और छात्र बड़े **पुरजोर** हैं,

कालिजों में सीखने को आये तोड़-फोड़ हैं।"[277]

***

"कलेजा मौत ने जब टटोला **इम्तिहाँ** में,

जमाने की तरुण की टोलियाँ ललकार बोलीं!"[278]

इस प्रकार दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में उर्दू शब्दों की भी एक विशेष पद्धति मिलती है। उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग उस समय राष्ट्रीय कविताओं में भाषायी समन्वय की दृष्टि से भी कवियों ने किया, क्योंकि हिन्दी के साथ उर्दू के कवियों में इकबाल, जफर, माहिर जैसे कवियों की वाणी में भी राष्ट्रीयता प्रकाशित होती है। इन शब्दों के प्रयोग से दिनकर जी की शैली में एक गति छाई है। शब्दों का प्रयोग ही नहीं कहीं-कहीं फारसी शैली की अभिव्यक्तियां भी कवि में मिल जाती हैं।

अंग्रेजी भाषा-

"**डिमोक्रेसी** दूर करो, हमें तानाशाह दो
एक **कैबिनेट** में अनेक यहाँ मुख हैं"[279]

***

"कम्यूनिस्ट और कांगरेसी में क्या फर्क है,
चिंतन में **सोशलिस्ट** गर्क है।"[280]

***

"रेलवे का **स्लीपर** उठाये कहाँ जाता है।"[281]

***

"किन्तु, रोज ही सब्जी कम, **कंपोस्ट** अधिक होते हैं,
बंद लिफाफे विरल, खुले **बुक-पोस्ट** अधिक होते हैं।

"**आर्केष्ट्रा** तो छोड़ चुका, हाँ, **'सोलो'** कुछ बजाता हूँ"[282]

इस प्रकार दिनकर जी अपनी राष्ट्रीय कविताओं में अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस संबंध में सावित्री सिंह जी का विचार द्रष्टव्य है- "दिनकर की भाषा-नीति का सबसे प्रथम, प्रमुख और अनिवार्य अनुबंध है, उसकी भावानुकूलता, जनजीवन से संबंधित प्रतिपाद्य के अनुकूल भाषा-निर्माण के लिए जैसे उर्दू, हिन्दी और संस्कृत के प्रचलित शब्दों का वे साथ-साथ प्रयोग करते हैं, वैसे ही अंग्रेजी के शब्द भी आवश्यकता पड़ने पर उसी प्रकार लेते हैं, जैसे वे विदेशी भाषा के शब्द न होकर हिन्दी के अपने शब्द हैं।"[283]

उपर्युक्त उदाहरणों से हम दिनकर जी की भाषा प्रयोग संबंधी विविधता व निपुणता को देख सकते हैं कि वे कितनी कुशलतापूर्वक उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी व देशज भाषा के शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में करते हैं। यह दिनकर जी की काव्य भाषा व उनकी भाषायी समझ का भी विस्तार है। किन्तु दिनकर जी का मन जिस भाषायी भावभूमि पर अधिक रमता है वह भावभूमि है- परिमार्जित, परिनिष्ठित और खड़ीबोली। यतीन्द्र तिवारी जी का कथन है कि "दिनकर जी की रुचि परिनिष्ठित, परिमार्जित एवं संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा में अधिक रमी है। यही कारण है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। उनके शब्द ससंदर्भ, भावगर्भित, अर्थ-गर्भित और चित्रमय होते हैं,

वस्तुतः उनका शब्दकोष समृद्ध, व्यापक और अक्षय है।"[284]शब्द प्रयोग या शब्दों का चयन दिनकर जी बड़ी सावधानी से करते हैं तथा कविता के भाव के अनुरूप चुनते हैं। शब्दों का चुनाव करते समय भावों-संवेदों एवं काव्य सौन्दर्य का पूर्ण ध्यान रखा गया है। कविता में शब्द चयन के संबंद्ध में दिनकर जी कहते हैं कि "शब्द-चयन ही कविता की वास्तविक कला है और इसके बिना कविता में कलात्मकता आ ही नहीं सकती।"[285]

(ट) मुहावरा और लोकोक्ति

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा में सजीवता लाने का कार्य भी करती है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की शक्ति हैं। इनके प्रयोग से भाषा के सम्प्रेषण में सरलता और सौंदर्य आ जाता है और वह प्रभावी बन जाती है। "लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे वाणी के शृंगार बनकर जहाँ लोक-साहित्य में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए हैं, वहाँ अभिजात अथवा शिष्ट साहित्य में भी साहित्यकारों द्वारा संपूजित हुए हैं। भावपूर्ण प्रसंगों की उद्भावना के अवसर पर वाग्मितायुक्त इन भंगिमापूर्ण, विदग्ध, भावप्रेरित एवं भावानुमोदित लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से साहित्य में जो सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, वह सर्वथा आकर्षक एवं विलक्षण होने के कारण अधिकाधिक प्रभावशाली बनकर सहृदय के चित्त को चमत्कृत कर देता है। वस्तुतः लोकोक्तियाँ और मुहावरे साहित्य-

रत्नाकर की बहुमूल्य रत्नावली हैं, जिनसे सुसज्जित होकर साहित्य अपूर्व वैभव-सम्पन्न बन जाता है।"[286] दोनों का साहित्य में विशेष स्थान है।

लोकोक्तियाँ और मुहावरों की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। दोनों परस्पर इस प्रकार भिन्न हैं- "मुहावरों की अपेक्षा उनकी व्याप्ति कम होती है, उनकी अर्थ व्यंजना भी सीमित होती है। लोकोक्ति वाक्य में प्रयुक्त होकर भी सदैव अपरिवर्तित रहती है। उनका काव्य तथा जीवन दोनों में कम प्रयोग होता है, क्योंकि लोकोक्ति-काव्य-वचन आदि द्वारा परिवर्तित न होने के कारण विशेष व्यवस्था की मांग करती है। वैसे लोकोक्तियों में जीवन के किसी साधारण व्यापार का कथन होता है, जो साम्य का समर्थक बनता है। इनके प्रयोगों में प्रायः वाक्यार्थ उपमान बनता है। कभी-कभी साम्य के आधार पर उसका प्रतीकवत प्रयोग होता है। साम्य की सिद्धि हो जाने से लोकोक्ति का प्रयोग स्वयं एक चमत्कार हो जाता है, इसलिए हिन्दी में इसे एक पृथक् अलंकार भी मान लिया गया है।"[287]

मुहावरे

ऐसा वाक्यांश जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराए, मुहावरा कहलाता है। अरबी भाषा का 'मुहावर' शब्द हिन्दी में 'मुहावरा' हो गया है। मुहावरे के प्रयोग से भाषा में सरलता, सरसता, चमत्कार और प्रवाह उत्पन्न होता है। मुहावरे का

प्रयोग वाक्य के प्रसंग में बात को प्रभावित तथा कम शब्दों में बहुत कुछ व्यक्त करने के लिए किया जाता है। भाषा में सहजता, काव्य में उत्कर्ष और भाव की गहन अनुभूति के लिए काव्य में मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। मुहावरों का काव्य में प्रयोग 'सोने पे सुहागा' की तरह होता है, जो काव्य के उत्कर्ष को और अधिक समृद्ध करता है। डॉ. ओमप्रकाश गुप्त लिखते हैं- "सोलहवीं शताब्दी में ग्रीक शब्द 'इडियोमा'(Idioma) से लैटिन में (Idioma) 'इडियोमा' फ्रेंच से इडियोटिस्म (Idiotisme) के रूप में वही शब्द अंग्रेजी में आया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द मूढ़ता की ओर संकेत करता है। 'इडियट' शब्द से संबोधित होने के नाते 'इडियोसी' की ध्वनि भी इससे निकलती है। अब अंग्रेजी में इस शब्द का प्राय: लोप हो गया और इसके स्थान पर 'इडियम' शब्द का प्रयोग होने लगा है। सोलहवीं शताब्दी के अनंतर कदाचित् सत्रहवीं शताब्दी के आसपास इडियोटिस्म के स्थान पर 'इडियम' शब्द मुहावरे के लिए प्राय: सर्वमान्य हो गया होगा और वर्तमान काल में 'इडियम' शब्द ही इसके लिए रूढ़ हो चुका है। आंग्ल भाषा के प्राय सभी कोशों में इसी शब्द को ग्रहण किया गया है।"[288]

कविता में मुहावरों के प्रयोग से काव्यगत भावों में शोभा की वृद्धि होती है। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी "काव्यभाषा के औज्ज्वल्य के लिए वांछित गुणों में कवि को मुहावरों के प्रयोग की ओर

विशेष ध्यान देने का संदेश दिया है। उनके मतानुसार मुहावरे कविता में जान डाल देते हैं, बहुत बातों को थोड़े में कहते और उसको चुस्त बनाते हैं।"[289]इसी का उल्लेख करते हुए 'हाली' लिखते हैं- "मुहावरे का प्रयोग यदि सुंदर ढंग से किया जाए तो वह निस्संदेह निकृष्ट पद्य को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ को श्रेष्ठतर बना देता है।"[290]इसमें कथ्य की संक्षिप्तता व भाषा की लक्षणा शक्ति समादृत रहती है। कवि एवं रचनाकार कविता में भावों को तीव्र और संक्षिप्त ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए मुहावरों का प्रयोग करता है। मुहावरा भाषा का ऐसा प्रयोग है जिसे रचनाकार अपने कथन को अधिक प्रभावित तथा सशक्त बनाने के लिए प्रयोग में लाता है। "मुहावरा किसी देश, जाति, अथवा जनसमूह की विलक्षण वाक् शैली का नाम है। मुहावरा किसी भाषा का विशिष्ट रूप, गुण स्वभाव अथवा लक्षण है तथा एक व्याकरणिक रचना है। मुहावरा किसी भाषा का वह विशिष्ट वाक्यांश या पदावली है, जिससे भाषा में विचित्रता अथवा वागवैचित्र्य की सृष्टि होती है। इसका अर्थ सामान्य भाषा एवं उसकी शब्द योजना से ग्राह्य नहीं होता है। यह भाषा के विशिष्ट ढाँचे में ढला हुआ होता है।''[291]

काव्य-शैली में मुहावरों का प्रयोग कविता को गुंफित और प्रभावशाली बना देता है। कविता में इसकी बहुल्यता उचित नहीं मानी जाती क्योंकि उससे कविता में शिथिलता एवं सामान्यता आती है। "मुहावरे सामान्यता

वाक्यांश होते हैं किन्तु उनका स्वरूप वाक्य का होता है। उनमें मुख्य क्रिया के रहने से अपने पूर्व अर्थ की उपस्थिति होती है। वाक्य में प्रयुक्त होने पर वे काल, पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित भी हो जाते हैं, कुछ का लक्ष्यार्थ तो वाच्यार्थ की भांति ही प्रचलित हो जाता है और कुछ का नहीं, कुछ व्यंग्यार्थ की भी योजना करते हैं। मुहावरों की लक्षणायें प्रायः सादृश्यमूला होती है। उनके अंतर्गत स्वभावोक्ति, रूढ़ोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि कई अलंकार आते हैं। जहाँ अलंकारों का चमत्कार बढ़ाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। वहाँ मुहावरे दुहरा काम करते हैं। एक तो वे भावों को तीव्रतर करते हैं और दूसरे अलंकारों में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। तीसरे उनमें प्रसिद्धार्थ होने से लक्षणाओं की सी दुरूहता नहीं होती।"[292]

माखनलाल चतुर्वेदी

मुहावरे किसी भी भाषा के प्राण तत्व होते हैं और वे भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ा देते हैं। कम शब्दों में बहुत कुछ कहना मुहावरों का काम है। चतुर्वेदी जी के काव्य में प्रयुक्त कुछ प्रमुख मुहावरे इस प्रकार हैं-

"श्वान के सिर हो- **चरण तो चाटता है**!
भोंक ले- क्या सिंह को वह डांटता है?
रोटियाँ खायीं कि साहस खा चुका है,

प्राणी हो, पर प्राण से वह जा चुका है।"[293]

चरण चाटना, कविता के संदर्भ में इस मुहावरे का अर्थ है- **चापलूसी करना**।

***

"रक्त है? या है **नसों में क्षुद्र पानी।**

जाँच कर, तू सीस दे-देकर जवानी?"[294]

यहाँ नसों में पानी होने का अर्थ है- **रक्त का पानी होना अर्थात पौरुषहीन** ।

***

"हरी घास शूली के पहले

की-तेरा गुण गान!

आशा मिटी, कामना टूटी,

बिगुल बज पड़ी यार!

मैं हूँ एक सिपाही पथ दे,

खुला देख वह द्वार!!"[295]

यहाँ बिगुल बज पड़ी का अर्थ है- **ऐलान करना, ढिंढोरा पीटना**।

***

"आज बना इतिहास बिचारा

निठुर प्रकृति का हास;

ले बैठी स्वतंत्र-भावना

मिट्टी में सन्यास।"[296]

यहाँ मिट्टी में सन्यास का अर्थ है- **मिट्टी में मिल जाना अथवा नष्ट हो जाना**।

***

"छोटे बागों को तुम देखो हम हँस-हँस खिलते हैं,

पथरीले टीलों पर देखो हम हाज़िर मिलते हैं!

दर्रे और घाटियों में अपना शृंगार घना है,

गिरी की **एड़ी से चोटी** तक बस सब कुछ अपना है!"[297]

यहाँ एड़ी से चोटी मुहावरे का प्रयोग हुआ है। कविता के संदर्भ में इसका अर्थ है- **आदि से अंत तक सब कुछ अपना** ही अपना है।

***

"मसल कर अपने इरादों सी, उठा कर,

दो हथेली हैं कि **पृथ्वी गोल कर दे**"[298]

पृथ्वी गोल करना अर्थात यदि हम **मन में ठान लें तो कुछ भी कर सकते हैं**।

***

"टूटता-जुड़ता समय 'भूगोल' आया,

गोद में मणियाँ समेट खगोल आया,

क्या जले बारूद?- हिम के प्राण पाए!

क्या मिला? जो **प्रलय के सपने** न आये।"[299]

प्रलय के सपने आना मुहावरे का अर्थ है कि हम चुप हैं इसका मतलब यह नहीं कि हम कमजोर हैं हमें भी प्रलय के सपने आते हैं। यह दुश्मनों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए।

"विश्व है असि का?- नहीं संकल्प का है;

हर प्रलय का कोण **कायाकल्प** का है;

फूल गिरते, शूल शिर ऊँचा लिये हैं,

रसों के अभिमान को नीरस किये हैं!"[300]

कविता के संदर्भ में 'कायाकल्प' का अर्थ है- खोई हुई ताजगी या ऊर्जा को दुबारा प्राप्त कर लेना।

***

"छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,

यह लुटिया-डोरी ले अपनी,

फिर वह पापड़ नहीं बेलने,

फिर वह **माला पड़े न जपनी**"[301]

***

"बहुत हुई यह **आँख-मिचौनी**,

तुम्हें मुबारक यह वैतरनी,

मैं साँसों के डाँड उठा कर,

पार चला लेकर युग-तरनी"[302]

यहाँ आँख मिचौनी मुहावरे का अर्थ है- **खिलवाड़, झांसा देना, हेरा-फेरी करना**।

***

"सीमा के उस पार हमारे **पहरे डोल रहे हैं**,

शक्ति और संयम के उलझे बंधन खोल रहे हैं;"[303]

पहरे डोल रहे हैं मुहावरे का अर्थ है- पहरे डोलना अर्थात **खतरा बने रहना**।

***

"फेंक तराजू रे बलि पंथी,

सिर के कैसे सौदे सट्टे!

बहुत किये मीठे मुँह जग के

अब उठ आज **दाँत कर खट्टे**।"[304]

दाँत खट्टे करने का अर्थ है- **पूर्ण रूप से पराजित कर देना** या **परास्त कर देना**।

***

"जो ओठों फड़क उट्ठा, नेत्र छाया

बरस कर गाल पर जो तमतमाया,

पिस उड़े दाँत, मुट्ठी बँध उठी, बस

सदा मैंने उसी का गीत गाया।"[305]

यहाँ इस मुहावरे का अर्थ है- दाँत पीसना अर्थात **बहुत क्रोधित होना**।

***

"चलो उठो अब प्रलय-रागिनी गा दें, सागर को दहला दें,

आज चीन को भारत से भिड़ने का थोड़ा **मज़ा चखा दें**।"[306]

मजा चखा देना मुहावरे का अर्थ है- **शत्रु को सबक सिखाना** या **बदला लेना**।

रामधारी सिंह दिनकर

दिनकर जी द्वारा कविताओं में मुहावरों का प्रयोग काव्य की चारुता को और अधिक बढ़ा देता है। दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त कुछ मुख्य मुहावरे इस प्रकार हैं-

"छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाये,

मत झुको अनय पर, भले **व्योम फट जाये**।"[307]

इन काव्य पंक्तियों में व्योम फटने का अर्थ है, आकाश फट जाना अर्थात् **एक साथ बहुत सारी मुसीबतों का आना**।

"अरी हया कर, हया अभागी!

मत फिर लज्जा को ठुकराती;

चीख न पड़े कब्र में अपनी,

फट न जाय अकबर की छाती।"[308]

इन काव्य पंक्तियों में प्रयुक्त मुहावरा है- छाती फटना। जिसका अर्थ हैं **सदमें में पहुँच जाना, अत्यधिक गम होने के कारण बेचैन होना**, **बहुत ज्यादा दु:खी होना**।

"अपना **रक्त पिला** देती यदि फटती आज वज्र की छाती"[309]

यहाँ 'रक्त पिलाना' मुहावरे का प्रयोग किया गया है।

***

"ये हैं वे, जिनके जादू **पानी में आग** लगाते हैं"[310]

कविता में 'पानी में आग लगाना' मुहावरे का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ होता है जटिल अथवा **असंभव कार्य को भी संभव करना**।

***

"धर कर चरण विजित शृंगों पर **झण्डा वही उड़ाते हैं,**

अपनी ही **उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते** हैं

पड़ी समय से होड़ खींच मत तलवों से काँटे रुक कर,

फूँक-फूँक चलती न जवानी चोटों से बच कर, झुक कर"[311]

दिनकर जी ने इन पंक्तियों में 'झण्डा उड़ाना (कामयाबी का ऐलान करना)', 'उँगली पर खंजर की जंग छुड़ाना', 'होड़ लगाना', 'फूँक-फूँक' कर चलना आदि मुहावरों का प्रयोग कर काव्य को मार्मिक बना दिया है।

***

"उबल रहे सब सखा, नाश की उद्धत एक हिलोर चले,

पछताते हैं बधिक, **पाप का घड़ा हमारा फोड़ चले**"[312]

यहाँ 'पाप का घड़ा फोड़ना' एक मुहावरा है जिसका सुंदर प्रयोग कवि ने अपनी काव्य पंक्ति में किया है।

***

"हम धोते हैं घाव इधर सतलज के शीतल जल से,

उधर तुझे भाता है इन पर **नमक** हाय! **छिड़कना।**"[313]

इन काव्य पंक्तियों में घाव पर नमक छिड़कना मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

***

"जनता जगी हुई है।

नाच रणचंडिका कि उतरे प्रलय हिमालय पर से,

फटे अतल पाताल कि झर-झर झरे मृत्यु अंबर से;

झेल कलेजे पर, किस्मत की जो भी नाराजी है,

खेल मरण का खेल, मुक्ति की यह पहली बाजी है।

सिर पर उठा वज्र, आँखों पर ले हरी का अभिशाप।

अग्नि स्नान के बिना धुलेगा नहीं राष्ट्र का पाप"[314]

इन काव्य पंक्तियों में दिनकर जी ने एक साथ कई मुहावरों का प्रयोग कर उसे मार्मिक बनाया है।

***

"सिर तोड़ देंगे, नहीं राह से टलेंगे हम,

हाँ, हाँ, जैसे चाहें, वैसे नाच के चलेंगे हम।

बीस साल पहले की **शेखी तुझे याद है।**

भूल ही गया है, अब भारत आज़ाद है।"[315]

शेखी तुझे याद है का अर्थ है- **शेखी बघारना**।

***

"अजब हमारा यह तंत्र है।

नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतंत्र है।

पुलिस करे जो कुछ, पाप है।

चोर का जो चाचा है, पुलिस का भी बाप है।"[316]

इन काव्य पंक्तियों में प्रयोग किए गये मुहावरे का अर्थ है- **हम किसी से कम नहीं**।

***

"चिंतक में अजब उमंग है।

जनता चकित और सारा विश्व दंग है।

एक कहता है, किस बात में

हम हैं स्वतंत्र, **यदि लाठी नहीं हाथ में?**"[317]

जिसकी लाठी उसकी भैंस नामक मुहावरे के संदर्भ में इसका प्रयोग किया गया है। जब हमारे हाथ में लाठी नहीं तो हम किस बात के स्वतंत्र हैं।

लोकोक्ति

लोकोक्ति के पीछे कोई कहानी या घटना होती है। उससे निकली बात, बाद में लोगों की जुबान पर जब चल निकलती है, तब लोकोक्ति हो जाती है। कविता में अतिरिक्त शोभावृद्धि के लिए लोकोक्ति का प्रयोग किया जाता है। "लोकोक्ति लोक मात्र की संपत्ति है। स्वदेशी भाषाओं के अतिरिक्त विश्व की विभिन्न भाषाओं में इसके पर्याय रूप में शब्द प्रयुक्त हैं। लोकोक्ति का समानार्थक आंग्ल भाषा का शब्द 'Proverb' है। इसका संबंध फ्रेंच के 'Proverbe' तथा इटली व लैटिन के 'Proverbro' से है। इनके अतिरिक्त लैटिन भाषा में लोकोक्ति के अर्थ में प्रयुक्त Proverbium (Pro, verbum, word) शब्द आलंकारिक उक्ति का अर्थ देता है।"[318] लोकोक्ति शब्द लोक+उक्ति के मेल से निर्मित हुआ है। जिसका सामान्य अर्थ है- लोक द्वारा कही गई वह उक्ति जो लोक-अनुभव आधारित होती है। लोकोक्ति लोक-अनुभव से निर्मित ज्ञान का भण्डार होती है। जिसमें ज्ञान के साथ-साथ लोकजीवन की लोक नीति, रीति, परंपरा, संस्कृति, इतिहास, व्यवहार आदि का समावेश होता है। नए लोक-अनुभवों के साथ नई लोकोक्तियों का प्रचलन होता रहता है। लोकोक्तियों की सामान्यतः मौखिक परम्परा होती है।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में मुहावरों के साथ-साथ लोकोक्तियों का भी सार्थक प्रयोग किया है। लोकोक्तिसहित पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं-

"जीने को देते नहीं पेट भर खाना,

मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना!"[319]

इन काव्य पंक्तियों में जो भाव है वो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य जेल में कैदियों को न ही खाने के लिए भोजन दे रहे हैं और न ही मरने दे रहे हैं ऐसे में कैदियों की स्थिति ऐसी है की वह तड़प-तड़प कर जी रहे हैं अर्थात यहाँ जिस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है वह **'न जीने देना और न ही मरने देना**।

इस प्रकार चतुर्वेदी जी अपने काव्य में मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से एक तरफ लोग व्यवहार से जुडते हैं तो दूसरी तरफ अपनी भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ा कर काव्य को और सशक्त व भावपूर्ण बनाते हैं। काव्य में मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग कवि की भाषायी सफलता को भी दर्शाता है।

लोकोक्ति

दिनकर जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

"जो सिकता में चंचु गाड़कर सुख से सोने वालों।"[320]

इस काव्य पंक्ति में प्रयुक्त लोकोक्ति के पीछे जो घटना है उसका संबंध शुतुरमुर्ग की प्रकृति से है। जब शुतुरमुर्ग के सामने कोई विपत्ति आती है तो वह अपनी चोंच को जमीन में गाड़ लेता है। उसी संदर्भ में इस लोकोक्ति का प्रयोग यहाँ हुआ है।

***

"है फरक मगर, काशी में जब वर्षा होती,

हम नहीं तानते हैं छाते बरसाने।"[321]

***

"**गरदन ऊँची रही** न हिन्दुस्तान की"[322]

***

"न माया ही जिन्हें मिलती, न जिनको राम मिलते हैं।"[323]

दिनकर जी कहीं-कहीं लोकोक्तियों और कहावतों का ज्यों का त्यों प्रयोग किया है। जैसे काशी में वर्षा बरसाने में छाता, गरदन ऊँची होना इसके

अतिरिक्त वज्र की छाती फटना, पानी में आग लगाना, माया मिली न राम इत्यादि ऐसे बहुत सारे प्रयोग दिनकर जी अपने काव्य में करते हैं।

***

"वासना-विषय से नहीं पुण्य-उद्भूत होता,
वाणिज के हाथ की कृपाण ही अशुद्ध है।"[324]

***

"समझे कौन रहस्य? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन-चुन कर बड़े कीमती लाल।"[325]

दिनकर की लोकोक्ति में कहीं-कहीं व्यंग्य भी दिखाई देता है-

"भोर-भोर ये चुगलखोर कितनी चुगली खाते हैं"[326]

इस प्रकार से दिनकर जी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में मुहावरों व लोकोक्तियों का सफल व सुंदर प्रयोग किया है, जिससे काव्य भाषा का भाषिक सौन्दर्य तो बढ़ा ही है, काव्य का भावात्मक सौन्दर्य भी बढ़ा है।

(ठ) कवि का व्यक्तित्त्व और उनकी भाषा

जिस प्रकार व्यक्ति का संबंध उसके व्यक्तित्त्व से होता है उसी प्रकार काव्य का संबंध भाषा से होता है। यदि व्यक्तित्त्व से व्यक्ति का प्रकाशन होता है, तो भाषा से भावों का। कवि जब अपने भावों का प्रकाशन काव्य रूप में प्रकट करता है, तब वह अपने लिए एक भाषा का

चुनाव करता है और यह चुनी हुई भाषा ही उसकी काव्य भाषा होती है। जिसे वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाता है। यह भाषा कवि के व्यक्तित्त्व प्रकाशन के साथ उसके भावों का भी प्रकाशन करती है अर्थात् कवि का व्यक्तित्त्व भावों में संचरित होकर भाषा में व्यक्त होता है। इस तरह कवि का व्यक्तित्त्व के स्तर पर भाषा से बाह्य संबंध तो बनता ही बनता है। भावों के स्तर पर भाषा के साथ उसका एक आंतरिक संबंध भी बनता है। यही संबंध कवि के व्यक्तित्त्व व काव्य-भाषा का संबंध कहलाता है। "भाषा-शैली कवि के व्यक्तित्त्व का दर्पण होता है। व्यक्तित्त्व अगर विचारों से बनता है, तो अभिव्यक्ति का साधन उसकी भाषा भी उस व्यक्ति के विचारों से प्रभावित रहती है।"[327] सीताराम जायसवाल जी का कहना है कि-"साधारण अर्थ में व्यक्तित्त्व, व्यक्ति-तत्त्व का फैलाव है, लेकिन गूढ़ अर्थ में आत्म-तत्त्व की अभिव्यक्ति है, जो कि मनोवैज्ञानिक तल पर व्यक्ति की मनोवृत्तियों (काम, क्रोध, भी, लोभ, मोह, धैर्य, कुंठा आदि) को किसी घटनाक्रम के प्रतिक्रिया स्वरूप समाज के सम्मुख उपस्थित करता है। प्रत्येक घटना के प्रति मनुष्य की कुछ प्रतिक्रिया होती है, यही प्रतिक्रिया व्यक्ति-तत्त्व है, जिसके द्वारा समाज में व्यक्ति का मूल्यांकन होता है। कवि की लेखनी तथा कलाकार की तूलिका क्रमश: दोनों ही अंतर्मन का मूल्यांकन करती चलती हैं। यही दार्शनिक आधार पर 'आत्मा' तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर 'मन' का प्रक्षेपण है।"[328] कवि और भाषा में जितनी अधिक निकटता होगी, काव्य

में भावों का घनत्व उतना सघन होगा। भाषा का संबंध भावों से होता है और भाव संचरण शील होते हैं। इस संचरण शीलता के कारण भी कई बार भाषा की संरचना में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इस कारण कवि के भावों के अनुकूल उसके भाषा में भी परिवर्तन लक्षित होता है अर्थात् कवि भाषा से और भाषा कवि से प्रभावित होती रहती है।

माखनलाल चतुर्वेदी जी का उनकी भाषा के साथ संबंध

माखनलाल चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्त्व व उनकी काव्य भाषा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्त्व व उनकी काव्य भाषा की निकटता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्त्व में राष्ट्रीयता का जो तेवर है। उसमें बस संकल्प ही संकल्प है किन्तु भाषा के विषय में वे संकल्पित व संकीर्ण नहीं हैं। किसी भी भाषा के शब्दों को वे अपने काव्य में स्थान दे देते हैं। जो उनके भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण है।

एक कवि के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्त्व में दो रूप दिखाई पड़ते हैं। पहला राष्ट्रीय कविताओं से जुड़ा राष्ट्रकवि का रूप तो दूसरा करुण काव्य से जुड़ा करुण कवि का रूप। राष्ट्र कवि के रूप में वे राष्ट्र के लिए संघर्ष कर रहे हैं और देशवासियों के मध्य राष्ट्रीय भावना के संचार के गीत गाते हैं। लोगों को राष्ट्र की मुक्ति के लिए आह्वान करते हैं। उनके अंदर एक उत्साह व उमंग की धारा प्रवाहित करते हैं। इस तरह

उनके कवि व्यक्तित्त्व में कहीं उत्साह दिखाई देता है, तो कहीं उमंग है, कहीं विद्रोह दिखाई देता है, तो कहीं बलिदान के लिए आह्वान, कहीं अभय निडरता दिखाई देती है, तो कहीं सर्वस्व न्यौछावर कर देने की ललक। "उनकी देह फूल जैसी कोमल है और उनका हृदय प्रशांत ज्वालामुखी की तरह विद्रोह और क्रांति की ज्वालाओं का अक्षय कोष है। उनके सम्पूर्ण कृतित्त्व में उनके व्यक्तित्त्व के इसी विरलता का समन्वय हमें प्राप्त होता है।"[329] चतुर्वेदी जी का यह व्यक्तित्त्व उनकी राष्ट्रीय कविताओं की काव्यभाषा में पूर्णतः परिलक्षित होता है-

"आत्मदेव। यह विषम दमन,
यह कष्ट-सहन, स्वागत सौ बार,
इनसे बढ़कर नहीं मुझे-
वे जय-जय ध्वनि, फूलों के हार।"[330]

चतुर्वेदी जी के काव्य व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है उनका करुण कवि का रूप। इस रूप में वे अपने जीवन के कारुणिक पक्ष को व्यक्त करते हैं। जहां उनकी काव्य भाषा का रूप राष्ट्रीय काव्य भाषा के रूप से अलग दिखाई पड़ता है। इस रूप में उनकी काव्य भाषा अधिक भाव पूर्ण हुई है। उसका रूप अधिक कोमल हुआ है। मधुरता का उसमें संचार है और कवि के अंदर की करुणा प्रस्फुटित हो उठी है-

"भाई छेड़ो नहीं मुझे खुल कर रोने दो,

यह पत्थर का हृदय आँसुओं से धोने दो।"[331]

इस प्रकार से यदि हम देखें तो पाते हैं कि माखनलाल चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्त्व व उनकी राष्ट्रीय कविता की भाषा एक-दूसरे के पूरक हैं। चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्त्व की जो सरलता है, वह उनकी काव्य भाषा में भी दिखाई पड़ती है।

रामधारी सिंह दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर जी के व्यक्तित्त्व, काव्य व काव्य भाषा में पूर्ण समन्वय दिखाई पड़ता है। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्त्व के अनुरूप ही गंभीर व भावपूर्ण है। उनके व्यक्तित्त्व की विराटता उनकी काव्य भाषा में भी दिखाई देती है। दिनकर की काव्य भाषा उनके व्यक्तित्त्व की स्पष्टता की तरह स्पष्ट व व्यवस्थित है। एक कवि की विशेषताएं व उसका व्यक्तित्त्व कैसा होना चाहिये, इस पर दिनकर जी स्वयं कहते हैं कि, "कवि वह संवेदनशील यंत्र है, जिसके भीतर से काल अपनी यांत्रिक पीड़ाओं की अभिव्यक्ति देता है। कवि वह दर्पण है, जिसमें समकालीन समाज की मुद्रा और मानसिकता प्रतिफलित होती है। वे कवि को उसी मात्रा में कवि मानते हैं, जिस मात्रा में वह अपने आपके समीप पहुँच जाता है। कवि के आत्मानुसंधान का लक्ष्य अविज्ञेय और अज्ञात ही होता है। कवि वह अभागा प्राणी होता है, जो विचार और शब्द के बीच भटकता

रहता है। वह जो कुछ भी पाता है उसका अभिप्रेत काव्य नहीं, बल्कि उसके निकटतम पहुँचने का प्रयास है।"[332] दिनकर जी एक गुणाग्रही कवि हैं। वे अपने काव्य व विचार दोनों में गुणों को तरजीह देते हैं। जो गुणों में निष्णात हैं, वह उन्हें प्रिय हैं फिर वह चाहे कोई भी हो। यह प्रभाव उनके काव्य भाषा पर भी दिखाई पड़ता है। उनकी भाषा भी गुणग्राही भाषा है। उसमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं दिखाई पड़ता है। दिनकर जी की तरह उनकी काव्य भाषा भी तटस्थ व तनकर खड़ी होने वाली भाषा है और अपनी एक स्वतंत्र छाप छोड़ने वाली भाषा है। दिनकर जी के कवि व्यक्तित्त्व पर सुनीति जी का विचार है कि "दिनकर स्वभाव से ही ओज और तेज का पुजारी है, उसका पात्र भले ही किसी भी कुल में उत्पन्न हुआ हो। भले ही वह किसी भी समस्या को लेकर खड़ा हो परंतु दिनकर की लेखनी उसका स्तवन करती है जिसमें शूरता और साहस अठखेलियाँ करते हैं। उसका समाज प्रगतिशील अवश्य है किन्तु वह भारतीय वर्ण-व्यवस्था को अंगीकृत करता है पर कर्म के आधार पर, जन्मजात नहीं। दिनकर कर्म का पुजारी है।"[333]

दिनकर जी का काव्य बहुआयामी है। उन्होंने काव्य में राष्ट्रीयता के साथ सामाजिक चिंतन एवं सांस्कृतिक चिंतन व राजनीतिक बोध की कविताएं लिखीं। यह उनके कवि व्यक्तित्त्व के अलग-अलग रूप हैं। जिनमें उनका व्यक्तित्त्व व काव्य भाषा दोनों का पूर्ण प्रकाशन होता है।

उनकी काव्य भाषा उनके व्यक्तित्त्व की अनुगामी भाषा है। उनके विचारों उनके चिंतन की गंभीरता उनके काव्य भाषा की गंभीरता बन जाती है। जैसे उनके विचार गंभीर व सुचिन्तित हैं, वैसे ही उनकी काव्य भाषा भी सुगठित व सुव्यवस्थित है। भाषायी शिथिलता दिनकर जी के काव्य में कहीं दिखाई नहीं पड़ती है। उनके व्यक्तित्त्व की सजगता का प्रभाव उनकी काव्य भाषा पर दिखाई पड़ता है। दिनकर जी जब राष्ट्रीय भाव की कविताएं लिखते हैं तो उनकी भाषा ललकार उठती है-

"ओ बदनसीब! इस ज्वाला में आदर्श तुम्हारा जलता है।
समझाएँ कैसे तुम्हें कि भारतवर्ष तुम्हारा जलता है।
जलते हैं हिन्दू मुसलमान भारत की आँखें जलती हैं।
आने वाली आजादी की लो! दोनों आँखें जलती हैं।"[334]

नोआखाली और बिहार के सांप्रदायिक संघर्ष के संदर्भ में हिन्दू और मुसलमानों के आपसी संघर्ष को देखकर उनका मन अत्यंत दु:खी हो उठता है। इस राष्ट्रीय समस्या पर प्रहार करते हुए कवि उसे इस प्रकार अपने काव्य में अभिव्यक्त करते हैं जिसमें कवि के व्यक्तित्त्व की झलक दिखाई देती है-

"ये छुरे नहीं चलते, छिदती जाती स्वदेश की छाती है,
लाठी खाकर भारत माता बेहोश हुई-सी जाती है।
चाहो तो डालो मार इसे, पर, याद रहे पछताओगे;

जो आज लड़ाई हार गये, फिर जीत न उसको पाओगे।"[335]

जब वे सामाजिक समस्याओं पर लिखते हैं तो उनकी भाषा क्रंदन कर उठती है, क्षुब्ध हो उठती है-

"आज की दीनता को प्रभु की पूजा का भी अधिकार नहीं।
देव! बना था क्या दुखियों के लिए निठुर संसार नहीं।
धन पिशाच की विजय, धन की पावन ज्योति अदृश्य हुई।
दौड़ो बोधिसत्व! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई।
मनुष्य-मेघ के पोशाक दानव आज निपट निर्द्वंद्व हुए।
कैसे बसें दीन? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए।"[336]

और जब वे सांस्कृतिक चिंतन पर लिखते हैं, तो उनकी भाषा कैसे और कितनी शालीन हो जाती है। 'हिमालय' कविता में दिनकर जी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है-

"कह दे शंकर से, आज करें, वे प्रलय नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूँज उठे, 'हर-हर-बम' का महोच्चार।"[337]

दिनकर जी की काव्य पंक्तियों में उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व की झलक-

"ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मण्डल का,
मेरा शिखण्ड अरूणाभ, किरीट अनल का।"[338]

दिनकर जी के व्यक्तित्त्व में जो तेज है, दीप्ति है, वह उनकी राष्ट्रीय कविता की भाषा में लक्षित होता है। यह उनके व्यक्तित्त्व व भाषा का गहरा जुड़ाव व एक दूसरे का, एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव है। जिस प्रकार कवि अपने समय देश, काल, वातावरण से प्रभावित होता है। उसी तरह से भाषा भी अपने देश, काल, वातावरण से प्रभावित होती रहती है। एक सजग कवि उन परिस्थितियों के अनुरूप ही अपनी भाषा का प्रयोग करता है। खड़ी बोली में भाषा का जो रूप दिनकर के काव्य में मिलता है। वह अपने आप में अद्‌वितीय है।

निष्कर्षतः उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि माखनलाल चतुर्वेदी जी व रामधारी सिंह दिनकर जी के काव्य भाषा में उनके व्यक्तित्त्व का पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है। माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा में जहां हमें एक सहजता व शालीनता दिखाई पड़ती है। वहीं दिनकर की काव्य भाषा में एक अलग किस्म की आक्रामकता व तेवर दिखाई पड़ता है। यह दोनों के व्यक्तित्त्व का प्रभाव भी है व अलगाव भी है। माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा में जहां क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग बहुतायत में मिलता है। वहीं दिनकर के काव्य में यह अल्पमात्रा में दिखाई पड़ता है। यह उनके व्यक्तित्त्व का ही प्रभाव है। एक ही भाषा का दो अलग-अलग कवियों के द्‌वारा प्रयुक्त होने पर कैसे उसका रूप बदल जाता है। भाषा कवि व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है। इस

प्रकार कवि और काव्य भाषा एक-दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं। कभी कवि भाषा को अपने अनुरूप बनाता है तो कभी भाषा के अनुरूप कवि खुद को ढालने की कोशिश करता है। यह कवि व्यक्तित्व व भाषा का एक-दूसरे पर प्रभाव व एक दूसरे से संबंध भी है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. चतुर्वेदी रामस्वरूप, काव्यभाषा पर तीन निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-2008, पृ. सं.-09
2. सिंह रामकुमार, आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, ग्रंथम, कानपुर, नवम्बर,1965, पृ. सं.-22
3. सिंह रामकुमार, आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, ग्रंथम, कानपुर, नवम्बर,1965, पृ. सं.-22
4. शुक्ल रामचन्द्र, चिंतामणि, भाग पहला, अनु प्रकाशन, जयपुर संस्करण-2005, पृ. सं.-102
5. शुक्ल रामचन्द्र, चिंतामणि, भाग पहला, अनु प्रकाशन, जयपुर संस्करण-2005, पृ. सं.-102
6. शुक्ल रामचन्द्र, चिंतामणि, भाग पहला, अनु प्रकाशन, जयपुर संस्करण-2005, पृ. सं.-104
7. शुक्ल रामचन्द्र, चिंतामणि, भाग पहला, अनु प्रकाशन, जयपुर संस्करण-2005, पृ. सं.-105
8. दिनकर रामधारी सिंह, कवि श्री, साहित्य सदन, झांसी प्रथमवृति 2012 वि., संयोजना से
9. http://kavishala.in दिनांक- 29-05-2022

10. चतुर्वेदी रामस्वरूप, काव्यभाषा पर तीन निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-2008, पृ. सं.-10
11. चतुर्वेदी रामस्वरूप, काव्यभाषा पर तीन निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-2008, पृ. सं.-10
12. पथिक देवराज शर्मा, हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा का समग्र अनुशीलन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन प्र.सं.-1979, पृ. सं.-224
13. यादव सुरेन्द्र, माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण-1978, पृ. सं.-92
14. महाले सुभाष, सावरकर और माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, सं.-1997, पृ. सं.-293
15. शर्मा रामाधार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी (एक अध्ययन), सरस्वती मंदिर, बनारस, प्र.सं.-1995, पृ. सं.-136-137
16. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-80
17. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-116
18. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ.-34-35
19. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण(झंकार कर दो), भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-97

20. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(राष्ट्रीय झण्डे की भेंट), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-29
21. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(बहने दो बलि-पंथी धारा), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-53
22. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उठ ओ युग की अमर साँस), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-47
23. जोशी श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली-6, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2003, पृ. सं.-227
24. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-61
25. शर्मा रामाधार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी (एक अध्ययन), सरस्वती मंदिर, बनारस, प्र.सं.-1995, पृ.सं.-45
26. चतुर्वेदी माखनलाल, बीजुरी काजल आँज रही, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1969, पृ. सं.-54
27. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी (तिलक), सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-83
28. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-37

29. चतुर्वेदी माखनलाल, बीजुरी काजल आँज रही, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1969, पृ. सं.-35
30. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-111
31. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-113
32. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ.सं.-111
33. चतुर्वेदी माखनलाल, बीजुरी काजल आँज रही, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1969, पृ. सं.-63
34. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(प्यारे भारत देश), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी द्वितीय संस्करण-1965, पृ.सं.-77
35. शर्मा रामाधार, माखनलाल चतुर्वेदी एक अध्ययन, सरस्वती मंदिर, बनारस, प्रथम संस्करण, 1955, पृ.सं.-83
36. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-20
37. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-01
38. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-13

39. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-20
40. जोशी श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली-6, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2003, पृ. सं.-45
41. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-31
42. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-113
43. सिंह योगेंद्र प्रताप, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना, श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद, संस्करण 2018-2019, पृ. सं.-291
44. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-55
45. जोशी श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली-6, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2003, पृ.सं.-46
46. पथिक देवराज शर्मा, हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा का समग्र अनुशीलन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन प्र.सं.-1979, पृ. सं.-262
47. दिनकर रामधारी सिंह, अर्धनारीश्वर, जनवाणी प्रकाशन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1952, पृ. सं.-74

48. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-20

49. दिनकर, रामधारीसिंह, नीलकुसुम, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ.सं.-19

50. सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1963, पृ. सं.-218

51. परमार सरला, दिनकर की काव्यभाषा: शैलीविज्ञान अध्ययन, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद, द्वि.,सं.-1991, पृ. सं.-70

52. दिनकर रामधारी सिंह, प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1976, पृ. सं.-17

53. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, उदयाचल, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1963, पृ. सं.-8

54. परमार सरला, दिनकर की काव्यभाषा: शैलीविज्ञान अध्ययन, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद, द्वि.,सं.-1991, पृ. सं.-70

55. तिवारी यतीन्द्र, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-173

56. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल(दिगंबरी), उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-53

57. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-05

58. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल(आशा का दीपक), उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-157

59. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी(आग की भीख), उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-170

60. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, द्वि., सं.-1986, पृ. सं.-23

61. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, केदारनाथ सिंह, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण 1954, पृ. सं.-72

62. दिनकर रामधारी सिंह, नीलकुसुम, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ. सं.-59

63. दिनकर रामधारी सिंह, रश्मिरथी, श्री अजंता प्रेस लिमिटेड, पटना, प्रथम संस्करण-1952, पृ. सं.-20

64. दिनकर रामधारीसिंह दिनकर, कोयला और कवित्त्व, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1964, पृ. सं.-42

65. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-73

66. यतीन्द्र तिवारी, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-316

67. दिनकर रामधारी सिंह, रश्मिमाला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2008, पृ. सं.-275

68. सिंह रामधारी, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-3, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1963, पृ. सं.-02

69. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-173

70. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-170

71. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-171

72. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-47

73. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-04

74. दिनकर रामधारी सिंह, मृत्ति-तिलक, चक्रवाल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण- 1964, पृ. सं.-11

75. यतीन्द्र तिवारी, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-350

76. यतीन्द्र तिवारी, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-350

77. यतीन्द्र तिवारी, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-352

78. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-4

79. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-ग

80. सिंह योगेंद्र प्रताप भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना, श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद, संस्करण-2018-19, पृ.सं.-132

81. तिवारी रामखिलावन, माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य, ग्रंथ-भारती, कानपुर, प्रकाशन काल-1966, पृ. सं.-376

82. तिवारी रामखिलावन, माखनलाल चतुर्वेदी:व्यक्तित्त्व और काव्य, ग्रंथ भारती, कानपुर, प्रकाशन काल-1966, पृ. सं.-376

83. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ.सं.-28

84. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-31

85. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ.-21-22

86. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-59

87. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि.

88. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-46

89. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-73

90. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(राष्ट्रीय झण्डे की भेंट), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-28

91. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उठ ओ युग की अमर साँस), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-46

92. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार (आज चीन को मज़ा चखा दें), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-52

93. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रचो बलिपथ सुहाने), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-65

94. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(प्यारे भारत देश), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ.सं-67

95. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-28

96. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि.- पृ. सं. -08

97. चतुर्वेदी माखनलाल, बीजुरी काजल आँज रही, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1969,पृ. सं.-7

98. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, इलाहाबाद, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, द्वितीय सं., पृ. सं.-114

99. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रक्त-वाहिनी से), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-31

100. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-05

101. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, इलाहाबाद, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, द्वितीय सं., पृ. सं.-17

102. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ.-26)

103. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण ज्वार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्र. सं.-1963, पृ. सं.-24

104. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, इलाहाबाद, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, द्वितीय सं., पृ. सं.-109

105. सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, अक्टूबर, 1963, पृ.-230

106. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-ख
107. दिनकर रामधारी सिंह, नीलकुसुम, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ. सं.-95
108. दिनकर रामधारी सिंह, हुंकार, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम पेपरबैक संस्करण-2002, पृ.-14
109. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल(सिपाही), उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ.-78
110. दिनकर रामधारी सिंह, हुंकार, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम पेपरबैक संस्करण-2002, पृ.-92
111. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-170
112. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-5, उदयाचल पटना, द्वितीय संस्करण-1986, पृ.सं.-30
113. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-5, उदयाचल पटना, द्वितीय संस्करण-1986, पृ.सं.-55
114. यतीन्द्र तिवारी, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-329
115. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल पटना, षष्टम संस्करण-अगस्त, 1972, पृ. सं.-58

116. दिनकर रामधारीसिंह, दिल्ली, उदयाचल, पटना, पृ. सं.-23
117. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल पटना, षष्टम संस्करण-अगस्त, 1972, पृ. सं.-53
118. सिन्हा सावित्री, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. सं.-अक्तूबर, 1963, पृ. सं.-234
119. सिंह रामकुमार, आधुनिक हिंदी काव्यभाषा, ग्रन्थम प्रकाशक, कानपुर-1965, पृ. सं.-82
120. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-79
121. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-99
122. सुनीति, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, प्रकाशन वर्ष-1966, पृ. सं.-227
123. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-73
124. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्ठम संस्करण- अगस्त 1972, पृ. सं.-9
125. राहुल, गिरिजाकुमार माथुर काव्य-दृष्टि और अभिव्यंजना, भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1996, पृ. सं.-146

126. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-50
127. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-1954, पृ. सं.-70
128. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-161
129. सिंह रविनाथ, काव्य-भाषा: चिंतन और सिद्धांत, योगेश प्रकाशन, बंबई, प्रथम संस्करण-1983, पृ. सं.-49
130. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-23
131. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका(शहीद-स्तवन), उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-56
132. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती-भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-31
133. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-1
134. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-06

135. सिंह योगेंद्र प्रताप, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना, श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद, संस्करण-2018-19, पृ. सं.-54

136. पथिक देवराज शर्मा, हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ. सं.-326

137. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती-भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-48

138. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-22

139. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-47

140. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार(उठो महाप्राण), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-17

141. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-17

142. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-55

143. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-79

144. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-80
145. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार(अचल ईमान), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-22
146. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(रणवेदी पर बलिवेदी पर), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-74
147. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-54
148. पथिक देवराज शर्मा, हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा का समग्र अनुशीलन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन प्र.सं.-1979, पृ. सं.-226
149. सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, प्रथम संस्करण, अक्टूबर, 1963, पृ. सं.-229-230
150. सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, प्रथम संस्करण, अक्टूबर, 1963, पृ. सं.-210
151. सिंह रामधारी, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-3, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1963, पृ. सं.-8
152. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-18
153. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-42

154. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-72

155. सिंह रामधारी, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-3, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1963, पृ. सं.-31

156. दिनकर रामधारी सिंह, नीलकुसुम, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ. सं.-58

157. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-157

158. दिनकार रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, षष्ठम संस्करण, अगस्त, 1972, उदयाचल, पटना, पृ. सं.-05

159. दिनकार रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, षष्ठम संस्करण, अगस्त, 1972, उदयाचल, पटना, पृ. सं.-08

160. दिनकार रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, षष्ठम संस्करण, अगस्त, 1972, उदयाचल, पटना, पृ. सं.-12

161. शर्मा कृष्णदेव, माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण-1989, पृ. सं.-274

162. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण ज्वार, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्र., सं.-1963, पृ. सं.-37

163. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-28

164. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-49
165. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-54
166. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-112
167. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार(वृक्ष की अभिलाषा), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-17
168. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार(अचल ईमान), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-22
169. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण(झंकार कर दो), भारती भंडार प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-97
170. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उड्डो शीश हथेली पर लो), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-26
171. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(युग धनी), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-27
172. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रक्त-वाहिनी से), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-31
173. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(सूर्य की पुकार), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-41-42

174. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-47
175. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(बहने दो बलि-पंथी धारा), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-53
176. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-54
177. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रचो बलिपंथ सुहाने), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-63
178. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-50
179. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-77
180. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-112
181. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-113
182. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-120
183. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-150

184. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार(वृक्ष की अभिलाषा), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्र. सं.-1963, पृ. सं.-15
185. दिनकर रामधारीसिंह, मरण-ज्वार (अचल ईमान), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-22
186. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उट्ठो शीश हथेली पर लो), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-26
187. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(युग धनी), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-27
188. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रक्त-वाहिनी से), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-31
189. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(आजादी पर), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-38
190. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(मुक्तक),हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-50
191. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रचो बलिपंथ सुहाने), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-64
192. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(बहने दो बलि-पंथी धारा), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-53
193. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(प्या भारत देश), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-67

194. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(मरण-ज्वार), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-69
195. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-10
196. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-13
197. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-25
198. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-34
199. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-132
200. शर्मा कृष्णदेव, माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र.,सं.-1979, पृ. सं.-277
201. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण-संवत-२०१३ पृ. सं.-18
202. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-78
203. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-29

204. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-89

205. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-28

206. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-49

207. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-54

208. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-148

209. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उट्ठो शीश हथेली पर लो), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-26

210. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(उठ ओ युग की अमर साँस), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-46

211. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(प्यारे भारत देश), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-67

212. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-20

213. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-27

214. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-78

215. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-49

216. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-119

217. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-148

218. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(रक्त-वाहिनी से), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-31

219. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(सूर्य की पुकार), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-41-42

220. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(मरण-ज्वार), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ.-69

221. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-28

222. जोशी श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली-6, वाणी प्रकाशन, द्वितीय सं.-2003, पृ. सं.-21

223. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-79

224. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-148

225. चतुर्वेदी माखनलाल, समर्पण, भारती भंडार,प्रथम संस्करण- संवत २०१३, पृ. सं.-75

226. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-29

227. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. सं.-अक्तूबर, 1963, पृ. सं.-220

228. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-4

229. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-21

230. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-73

231. दिनकर रामधारीसिंह, मृत्ति-तिलक, चक्रवाल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण- 1964, पृ. सं.-03

232. दिनकर रामधारीसिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1950, पृ. सं.-76

233. दिनकर रामधारीसिंह, इतिहास के आँसू, श्री अजंता प्रेस लिमिटेड, पटना, प्रथम संस्करण-1951, पृ. सं.-55

234. दिनकर रामधारीसिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1950, पृ. सं.-31

235. दिनकर रामधारीसिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1950, पृ. सं.-63

236. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-62

237. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-5, उदयाचल पटना, द्वितीय संस्करण-1986, पृ. सं.-12

238. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, खंड-5, उदयाचल पटना, द्वितीय संस्करण-1986, पृ. सं.-49

239. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल पटना, तृतीय संस्करण-1986, पृ. सं.-20

240. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, केदारनाथ सिंह, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण 1954, पृ. सं.-11

241. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ. सं.-59

242. दिनकर रामधारी सिंह, कुरुक्षेत्र, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2003, पृ. सं.-68

243. दिनकर रामधारीसिंह, रश्मिरथी, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण-1952, पृ. सं.-54

244. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्ठम संस्करण-अगस्त 1972, पृ. सं.-2

245. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-129

246. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-18

247. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-18

248. दिनकर रामधारीसिंह, रश्मिरथी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष-2009, पृ. सं.-39

249. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15,नवम्बर 1954 पृ. सं.-14

250. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-361

251. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्ठम संस्करण-अगस्त 1972, पृ. सं.-65

252. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्ठम संस्करण-अगस्त 1972, पृ. सं.-67

253. दिनकर रामधारीसिंह, दिल्ली (भारत का यह रेशमी नगर), उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1954, पृ. सं.-22

254. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-65

255. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-09

256. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-10

257. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-10

258. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-11

259. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-35

260. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-58

261. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-37

262. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-37

263. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-37

264. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-38

265. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-52

266. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-62

267. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-62

268. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-62

269. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-63

270. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त, 1986, पृ. सं.-14

271. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त, 1986, पृ. सं.-14

272. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त, 1986, पृ. सं.-38

273. दिनकर रामधारीसिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-11

274. दिनकर रामधारीसिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-29

275. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-09

276. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष- 15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-10

277. दिनकर, रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण अगस्त 1986, पृ. सं.-64

278. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-51

279. दिनकर रामधारीसिह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम सं.-1972, पृ. सं.-66

280. दिनकर रामधारीसिह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम सं.-1972, पृ. सं.-64

281. दिनकर रामधारीसिह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम सं.-1972, पृ. सं.-61

282. दिनकर रामधारी सिंह, कोयला और कवित्त्व, उदयाचल, पटना, षष्टम सं.-1934, पृ. सं.-41

283. सिन्हा सावित्री, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. सं.-अक्तूबर, 1963, पृ. सं.-223

284. तिवारी यतीन्द्र, दिनकर की काव्यभाषा, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं.-1976, पृ. सं.-173

285. दिनकर रामधारी सिंह, मिटटी की ओर, उदयाचल, पटना, द्वितीय सं.-1949, पृ. सं.-152

286. सूर्यप्रकाश, लोकोक्ति और मुहावरा स्वरूप विश्लेषण, लोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990, पूर्वपीठिका से

287. सिंह रामकुमार, आधुनिक हिंदी काव्यभाषा, ग्रन्थम प्रकाशक, कानपुर-1965, पृ. सं.-82

288. सूर्यप्रकाश, लोकोक्ति और मुहावरा स्वरूप विश्लेषण, लोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. सं.-56

289. गुप्त सुरेशचंद्र, काव्यशास्त्रीय चिंतन, रवींद्र प्रकाशन, आगरा, संस्करण-1972, पृ. सं.-94

290. गुप्त सुरेशचंद्र, काव्यशास्त्रीय चिंतन, रवींद्र प्रकाशन, आगरा, संस्करण-1972, पृ. सं.-94

291. सूर्यप्रकाश, लोकोक्ति और मुहावरा स्वरूप विश्लेषण, लोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. सं.-59

292. सिंह रामकुमार, आधुनिक हिंदी काव्यभाषा, ग्रन्थम प्रकाशक, कानपुर-1965, पृ. सं.-81

293. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-114

294. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-113

295. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-52

296. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-55

297. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-58

298. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-113

299. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-115

300. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-116

301. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-117

302. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-117

303. चतुर्वेदी माखनलाल, वेणु लो, गूँजे धरा(आजादी पर), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-1965, पृ. सं.-38
304. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(मुक्तक), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-50
305. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(मुक्तक), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-50
306. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण-ज्वार(आज चीन को मजा चखा दें), हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1963, पृ. सं.-52
307. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-21
308. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-65
309. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-49
310. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-54
311. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-54

312. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-35

313. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-62

314. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-42

315. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-62

316. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-63

317. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, षष्टम संस्करण-1972, पृ. सं.-67

318. सूर्यप्रकाश, लोकोक्ति और मुहावरा स्वरूप विश्लेषण, लोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. सं.-20

319. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-15

320. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, दिसंबर -1954, पृ. सं.-86

321. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-243

322. दिनकर रामधारीसिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, जनवरी,1963, पृ. सं.-48

323. दिनकर रामधारी सिंह , नीलकुसुम, श्री अजंता प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण, पृ. सं.-30

324. दिनकर रामधारीसिंह, कुरुक्षेत्र, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2003, पृ. सं.-27

325. दिनकर रामधारीसिंह, रश्मिरथी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष-2009, पृ. सं.-14

326. https://books.google.co.in (19-06-2022) (कोयला और कवित्व, दिनचर्या से

327. महाले सुभाष, सावरकर और माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, सं.-1997, पृ. सं.-292

328. सिंह रमारानी, दिनकर साहित्य में व्यक्तितत्व की अभिव्यक्ति, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण-1994, पृ. सं.-124

329. चतुर्वेदी माखनलाल, मरण ज्वार, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रवेश से

330. चतुर्वेदी माखनलाल, युगचरण, भारती भंडार प्रकाशक, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं.-२०१३ वि., पृ. सं.-13

331. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमतरंगिनी, भारत भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण: सं. 2005, पृ. सं.-21

332. प्रतिमा जैन, दिनकर काव्य कला और दर्शन, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर,प्रथम संस्करण 1980, पृ. सं.-338
333. सुनीति, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, प्रकाशन वर्ष-1966, पृ. सं.-104
334. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-29
335. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-30
336. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-18
337. दिनकर रामधारीसिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, प्रकाशन वर्ष-15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-08
338. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-44